विक्रमार्क

THE VIKRAMĀRKA

अर्धवार्षिक शोध–पत्रिका

Half Yearly Research Journal

ग्रन्थ– 1
Vol-1

वसन्त 2069

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन

तत्कृतं यन्न केनापि तद् दत्तं यन्न केनचित् ।
तत् साधितमसाध्यं यद्विक्रमार्केण भूभुजा ।।

ऊपर तो सूरज तपे, धरती विकरमदीत ।
धन धरती, जस मालवो, धन राजा की रीत ।।

न स देशो न स ग्रामो न स लोको न सा सभा ।
न तन्नक्तं दिवं यत्र विक्रमार्को न गीयते ।।

विक्रमार्क

THE VIKRAMĀRKA

अर्धवार्षिक शोध–पत्रिका
Half Yearly Research Journal

ग्रन्थ– 1
Vol-1

वसन्त 2069

प्रधान सम्पादक
श्रीराम तिवारी

सम्पादक
डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

समन्वयक
प्रदीप अग्रवाल

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, मध्यप्रदेश
1, उदयन मार्ग, उज्जैन –456010

विक्रमार्क
(THE VIKRAMĀRKA)

अर्धवार्षिक शोध पत्रिका
Half Yearly Research Journal

संवत् : 2069 वसन्त
सन् : 2012

मूल्य : एक अंक 40 रु
वार्षिक 80 रु

आवरण : विक्रम कदस परवतन्द्र
(ईसवी पूर्व प्रथम शती की लिपि में सिक्के पर अंकित)

आकल्पन : रुद्राक्ष ग्राफिक्स, उज्जैन
9165512233

प्रकाशक : महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय
1, उदयन मार्ग, उज्जैन - 456010
दूरभाष : (0734) 2521499
Email : vikramadityashodhpeeth@gmail.com
Fax : 0734-2521499

मुद्रण : पंचायतीराज मुद्रणालय
1, औद्योगिक क्षेत्र, नागझिरी
देवास रोड, उज्जैन

* प्रकाशित सामग्री के विचारों से शोधपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

स्थापना

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ स्वराज संस्थान संचालनालय के अन्तर्गत उज्जैन में 2009 से संचालित हो रहा है। उज्जैन में रहते हुए सम्राट् विक्रमादित्य ने विदेशी शकों से भारत को मुक्ति दिलाकर स्वतंत्रता संग्राम का सूत्रपात किया था। और भारत की उस अभूतपूर्व विजय के उपलक्ष्य में नये संवत् का प्रवर्तन किया था। आज वह विक्रम संवत् के नाम से सर्वज्ञात है।

वीर, साहसी, न्यायप्रिय, विवेकशील, दानी, विद्वान्, संस्कृति के उन्नयन में सदा तत्पर इत्यादि विभिन्न विशेषताओं के कारण विक्रमादित्य की ख्याति देश–विदेश के आम तथा खास वर्ग में सदा से रही है। ऐसे अप्रतिम महानायक तथा उनके युग के विषय में अधिकाधिक अन्वेषण के लिए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्रीशिवराजसिंहजी चौहान, संस्कृति मंत्री श्रीलक्ष्मीकांतजी शर्मा और उज्जैन विकास प्राधिकरण के तत्कालीन अध्यक्ष तथा म.प्र. राज्य पर्यटन विकास निगम लि. के वर्तमान अध्यक्ष डॉ. मोहन यादवजी की सदाकांक्षा और सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप इस शोधपीठ की स्थापना हुई और वह अपने लक्ष्य की ओर सतत गतिशील है।

शोधपीठ शोध करता, करवाता और नये नये अन्वेषणों को प्रकाश में लाता है। ऐसे नये नये तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए शोधपीठ की एक शोध पत्रिका की अपेक्षा के अनुरूप इस षाण्मासिक **विक्रमार्क** शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। इस प्रवेशांक की सामग्री संकलन के लिए डॉ. प्रशान्त पुराणिक और डॉ. रमण सोलंकी का तथा लेखकीय सहयोग के लिए समस्त विद्वानों का बारम्बार हार्दिक आभार ।

सम्पादक

अनुक्रम

1.	विक्रमादित्य की मुद्रा	डॉ. आर.सी. ठाकुर अध्यक्ष, अश्विनी मुद्रा शोध संस्थान, महिदपुर	0–01
2.	विक्रमादित्य की ऐतिहासिक परम्परा	प्रो. डॉ. सुस्मिता पाण्डे आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	02–06
3.	विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता– पुरातत्त्व सन्दर्भ	डॉ. जगन्नाथ दुबे निदेशक, वाकणकर शोध संस्थान, उज्जैन	07–12
4.	विक्रमादित्य का सभासद मूलदेव एवं विपुला और अचला	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित निदेशक, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन	13–17
5.	विक्रमादित्य का समकालीन दत्तकाचार्य	श्रीमती निमिषा राजपुरोहित सदर बाजार, रावटी–जिला रतलाम	18–19
6.	शुकसप्तति में विक्रमादित्य	डॉ. श्रीमती इला घोष प्राचार्या, शासकीय महाविद्यालय, कटनी	20–24
7.	(क) लोक मानस में वीर विक्रमादित्य (ख) सुलभ नाम की दुर्लभ यश पताका	डॉ. पूरन सहगल निदेशक, मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा	25–36
8.	जटवारे की लोक कथाओं में विक्रमादित्य	नरेशकुमार पाठक संग्रहाध्यक्ष, जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, हिन्दूपतमहल, पन्ना (म.प्र.)	37–39
9.	आन्ध्र में विकीर्ण विक्रमार्क सौरभ	डॉ. जगदीश शर्मा उप–निदेशक, कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन	40–42
10.	भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित रहे सन्–संवतों की सूची	डॉ. श्यामसुन्दर निगम निदेशक, कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन	43–45
11.	KING VIKRAMADITYA OF PARAMARA DYNASTY IS HISTORICAL PERSON OF FIRST CENTURY B.C.E.	Dr. M.L. Raja, M.B.B.S., D.O. Director, Avinash, Sree Krishna Hospital, 15, Sangagiri Road, Pallipalayam, Erode-6, Pin-638006	46–53 54–55

विक्रमादित्य की मुद्रा

डॉ. आर.सी. ठाकुर

898 के विक्रम संवत् के लेख में 'विक्रमादित्य' शब्द की प्राप्ति के पश्चात् विक्रमादित्य विषय पर विचार विश्लेषण एवं संशोधन की निरंतर आवश्यकता रही थी। डॉ. वि.श्री. वाकणकर जी के प्रयत्न एवं डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित के साहित्यिक विवरणों से हमें इस विषयक अनेक उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त हुई है। किंतु मेरे द्वारा मुद्राओं पर निरंतर किये जाने वाले कार्य और विवेचन तथा अधिकाधिक विषय–विशेषज्ञों से विचार विमर्श से एक विशिष्ट ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई।

यह ताम्र मुद्रा है ई.पू. के विक्रमादित्य की। उस विक्रमादित्य का नाम इस मुद्रा पर अंकित होने से विक्रमादित्य संबंधी प्रथम पुरा-प्रमाण हमारे सम्मुख आता है। यह मुद्रा डा. श्यामसुंदर निगम, डॉ. जगन्नाथ दुबे तथा इंदौर और मुम्बई के मुद्रा विशेषज्ञों को दिखाई, तब जाकर मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि मौर्योत्तर काल की यह मुद्रा राजा विक्रम की ही है। मुद्रा गोलाकार है, जिसकी धातु ताम्र है। मुद्रा के अग्रभाग पर दण्डधारी सिर पर मुकुट धारण किये एक पुरुष आकृति के साथ ही ब्राह्मी लिपि में लेख 'राजा विक्रम' कभी दाहिनी ओर तो कभी बायीं ओर तरफ अंकित मिलता है।

मुद्रा के पश्च भाग पर उज्जयिनी चिह्न है। इस प्रकार की मुद्रा प्रथम सदी ई.पू. की उज्जयिनी चिह्न वाली मिलती है। मुद्रा की लिपि भी उस समय प्राप्त होने वाली अन्य मुद्राओं के समान ही है। मुद्रा बनावट में कलात्मक नहीं है। अधिक मोटी है और अंकन के अक्षर भी कलात्मक नहीं हैं। निश्चित ही विक्रम नामधारी इस मुद्रा से उज्जयिनी के परम्परा पुरुष ऐतिहासिक राजा प्रजापालक, न्यायप्रिय लोकनायक 'विक्रमादित्य' की उलझी समस्या का समाधान हो सकेगा।

विक्रमादित्य की ऐतिहासिक परम्परा

प्रो. सुस्मिता पाण्डे

विक्रमादित्य से सम्बन्धित तीन प्रमुख पक्ष हैं-

(क) विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता।

(ख) विक्रमादित्य के काल का प्रश्न।

(ग) विक्रम संवत् के प्रवर्तक की समस्या।

यदि हम पहली समस्या का समाधान नहीं करते हैं तो हमारे समक्ष केवल साध्यसम हेत्वाभास ही हाथ आएगा। ये तीनों समस्याएँ अंतरंग रूप से जुड़ी हैं।

विक्रम संवत् को सर्व प्रथम कृत संवत् फिर मालव संवत् कहा गया। वह 57 ई.पू. से प्रारम्भ हुआ। अलबरूनी के अनुसार शक संवत् विक्रमादित्य के 135 वर्ष पश्चात् हुआ[1]। इस साक्ष्य के अनुसार विक्रम संवत् 57 ई. पू. में निश्चित होता है। वे प्रमुख अभिलेख, जिनसे कृत से मालव फिर विक्रम की परम्परा दिखती है, निम्नलिखित हैं –

(1) उदयपुर का नंदसा यूप अभिलेख, जिसकी तिथि 282 है- कृतयोर्द्वयोर्वर्षतपोर्द्वय शीतयोः चैत्यपूर्णमास्याम्[2]।

(2) (क) राजस्थान का बरनाला यूप अभिलेख जिसमें 284 तिथि दी है[3]।

(ख) बरनाला का ही दूसरा अभिलेख है, जिसमें 335 तिथि है। इनमें कृतेहि उल्लिखित है।

(3-5) राजस्थान में बड़वा से प्राप्त तीन अभिलेख जो मौखरी महासेनापतियों के हैं। इनमें 295 वर्ष और कृतेहि है[4]।

(6) राजस्थान का विजयगढ़ अभिलेख 428 वर्ष जिसमें कृतेषु लिखा है[5]।

मालव लिखे अभिलेखों में निम्न है-

(1) 461 के मंदसौर अभिलेख में कृत तथा मालव दोनों संवतों का नाम है[6]।

श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते।

अतः मालव तथा कृत एक ही संवत् है।

मन्दसौर अभिलेख में तिथि मालव संवत् में है। इसके अतिरिक्त अन्य अभिलेखों में भी मालव संवत् का उल्लेख है। विक्रम संवत् का उल्लेख निम्न अभिलेखों में है –

(1) 794 वर्ष का धिनिकी (गुजरात) के सैन्धव राजा जयैकदेव का अभिलेख है, जिसमें लिखा है- विक्रमसंवत्सरशतेषु सप्तसु चतुर्नवत्यधिकेष्वंकतः[7]।

(2) 898 वर्ष का चाहमान चंडमहासेन का धौलपुर अभिलेख है, जिसमें लिखा है- वसुनवाष्टौ वर्षागतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य[8]।

इस संवत् के 1100 के लगभग तथा उसके पश्चात् विक्रम, विक्रमादित्य, विक्रम संवत्, विक्रम काल आदि नाम आते

हैं । ये अधिकांश रूप से राजस्थान, गुजरात तथा मध्यप्रदेश से प्राप्त होते हैं।अतः 428 वर्ष तक यह संवत् कृत कहलाया फिर मालव, फिर विक्रम और फिर विक्रमादित्य।

जैन पट्टावलियाँ उपर्युक्त संवत् का श्रेय विक्रमादित्य को देती हैं। इसके अनुसार महावीर के निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य का शासन हुआ, जो 60 वर्षों तक हुआ। इस प्रकार 57 ई.पू. उसकी तिथि आ जाती है।

पट्टावलियों से स्पष्ट होता है कि गर्दभिल्ल का राज्य तेरह वर्ष हुआ, फिर चार वर्ष शकों का राज्य रहा, फिर विक्रमादित्य का शासन आया।

प्रभावकचरित (प्रभाचन्द्र सूरि) के अन्तर्गत कालक सूरि का जीवन वृत्त है। इसके अनुसार धारावर्ष में वीरसिंह का राज्य था। उसका पुत्र कालक और पुत्री सरस्वती थी। गुणाकर नामक जैन संत से प्रभावित होकर कालक बहिन सहित जैन बन गया। एक बार वह उज्जयिनी गया। वहाँ के राजा गर्दभिल्ल ने सरस्वती का अपहरण कर लिया। कालक के विनती करने पर भी जब गर्दभिल्ल ने सरस्वती को नहीं छोड़ा, तो कालक पश्चिम दिशा में सिंधु पार कर शकों के देश पहुँचा। वहाँ नब्बे शक राजा थे, जिनका एक अधिपति था। एक बार जब अधिपति इन राजाओं से क्रुद्ध हुआ तब कालक इन सभी सामन्त राजाओं को सौराष्ट, लाट तथा मालव तक ले आए। उन्होंने विशाला (उज्जयिनी) को घेरकर गर्दभिल्ल को पकड़ लिया, उसको देश निकाला दिया तथा वन में वह सिंह द्वारा मारा गया। सरस्वती भिक्षुणियों में वापस चली गई। इस घटना के कुछ वर्षों बाद विक्रमादित्य बहुत प्रतापी राजा बन गया और अपना संवत् चलाया। उसके 135 वर्ष बाद शकों ने पुनः अवन्ती को जीता और अपना शक संवत् चलाया[9]।

यद्यपि प्रभावक सूरि का प्रभावकचरित और मेरुतुंग की पट्टावली दोनों चौदहवीं शती के माने जाते हैं, तथापि अन्य स्रोत भी इनका समर्थन करते हैं[10]। अन्य स्थानों में तेरहवीं शताब्दी का ज्योतिर्विदाभरण, भट्टोत्पल (नवीं शताब्दी), आमराज (बारहवीं शताब्दी) आदि भी हैं। 1606-07 में तारीख फरिश्ता में कहा गया है कि विक्रमादित्य ने उज्जैन बसाया, धार में दुर्ग बनाया त्तथा उज्जैन में महाकाल देवालय बनाया[11]।

वस्तुतः विक्रमादित्य सम्बन्धी सबसे प्राचीन साक्ष्य गुणाढ्य की बृहत्कथा (प्रथम सदी) है। इसके अनेक रूपान्तर बाद में हुए। जैसे बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (बुधस्वामी)[12], क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा–मंजरी, सोमदेव की कथासरित्सागर। बृहत्कथा क्योंकि विक्रमादित्य से एक ही शताब्दी बाद की रचना है, इसलिए उसके साक्ष्य को प्रामाणिक मानना चाहिए।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों में ई.पू. 250 से ईस्वी 250 तक के मालवगण के सिक्के मालवा क्षेत्र में व्यापक रूप से प्राप्त हुए हैं। डॉ.वि.श्री. वाकणकर को कतस उजनीयस लेख वाली मुद्रा भी प्राप्त हुई थी, जिसमें कतस अथवा कुतस के अर्थ कृतस्य लिये गये हैं । पद्मश्री डॉ.वाकणकर को ई.पू. प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी लिपि में संस्कृत लेख मिला है, जो अँवलेश्वर से है, जिसमें विक्रमादित्य का उल्लेख है[13]।

विक्रमादित्य के विषय में विभिन्न विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत है। अल्तेकर के अनुसार यदि यह संवत् विक्रमादित्य ने प्रारम्भ किया होता तो पहले ही उनके नाम पर आधारित होता। यह कृत द्वारा स्थापित हुआ था, जो मालवगण का अधिपति था। बाद में जब यह मालव से बाहर प्रचलित हुआ तो इसे एक विशिष्ट व्यक्ति चन्द्रगुप्त द्वितीय (गुप्त वंश के) के नाम से जोड़ दिया गया। यह चन्द्रगुप्त के सिक्कों के पृष्ठभाग पर विक्रमादित्य विरुद से स्पष्ट होता है। वी.वी. मिराशी भी इसी मत की पुष्टि करते हैं[14]।

उनके अनुसार कृत का अर्थ प्रारम्भ हुआ से है।

डी.आर. भंडारकर ने भी विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं किया तथा कृत शब्द से कृतयुग का अर्थ लिया है, जो उनके अनुसार पुष्यमित्र शुंग ने चलाया था।

सर जॉन मार्शल के अनुसार यह संवत् एजिस प्रथम ने प्रवर्तित किया। उसका उत्तर–पश्चिमी भारत में प्रथम शताब्दी ई.पू. में अधिपत्य था, जिनमें सिंध तथा पंजाब भी थे और किसी अय तथा अज के द्वारा जारी किये गये संवत् का पता हमें अभिलेखिक साक्ष्यों से मिलता है। यह दोनों उनके अनुसार एजिज ही थे[16]। रेप्सन भी इनसे सहमत है[17]।

बी.एन मुकर्जी का भी मत यही है। उन्होंने महाराज अय से सम्बन्धित संवत् के उल्लेख के उदाहरण दिये हैं[18]।

डी.सी. सरकार ने विक्रम संवत् का प्रवर्तनकर्ता वोनोन्स को माना है। यह भी प्रथम श.ई.पू. का माना गया है[19]। मालवों ने पंजाब में इसको अपना लिया, फिर अपने साथ राजस्थान तथा मालवा में लाए। सरकार के अनुसार बाद में गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त के विक्रमादित्य नाम से यह जुड़ गया। पश्चिमी भारत के शकों को उसने हराया। उनका यह भी कहना है कि भारतवर्ष में संवत् की परम्परा नहीं थी। परन्तु यह बात तर्क सिद्ध नहीं लगती कि मालवगण, जो वीर तथा स्वतंत्र प्रकृति के थे, वे उन्हीं विदेशियों का संवत् अपनाएँगे जिनके कारण उन्हें पंजाब छोड़ना पड़ा। चन्द्रगुप्त के नाम पर भी यह संवत् नहीं हो सकता, क्योंकि गुप्तों का अपना संवत् था तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय की शकों पर विजय इतनी भी महत्त्वपूर्ण नहीं थी कि संवत् को उसका नाम दिया जाता। उज्जयिनी, जहाँ यह संवत् प्रारम्भ हुआ उसको शक विजय के पश्चात् उसने बहुत अधिक महत्त्व दिया हो, यह भी प्रमाणित नहीं है[20]।

विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता केवल व्यतिरेकी प्रमाण से भी सिद्ध हो सकती है। उस समय कौन सी समकालीन शक्तियाँ थीं ? 72 ई. पूर्व से 30 ई. पूर्व तक काण्वों का राज्य था। इसी समय पुराणों के अनुसार शुंगों के कुछ अन्य वंशज भी थे, जो कण्वों के अन्तर्गत मालव में भी थे[21]।

डी.सी. सरकार के अनुसार सातवाहनों के राजा सिमुक ने सुशर्मन् कण्व का राज्य जीता, जो अपने आखरी दिनों में संभवतः मालव तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र में था तथा सिमुक की तिथि प्रथम शताब्दी ई. पूर्व के द्वितीय अथवा तृतीय चरण कही जा सकती है[22]।

उनके अनुसार सातकर्णी प्रथम के तो पूर्वी मालव में होने की संभावना अनेक विद्वान् मानते हैं। क्योंकि सांची के स्तूप के दक्षिण तोरण द्वार में आनन्द नामक स्थपति का उल्लेख है, जो सातकर्णी के अन्तर्गत था। सातकर्णी प्रथम की तिथि 27-17 ई.पू. दी गई है[23]। परन्तु आवेषनी का एक अन्य अर्थ अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है। आवेषनी अपने स्थान से दूर कहीं भी ठेके में भी कार्य करते थे[24]। शातकर्णी प्रथम को खारवेल का समकालीन भी माना गया है, जैसा कि खारवेल के हाथी गुफा अभिलेख से स्पष्ट है। खारवेल के राज्य का पंचम वर्ष नन्दराज के समय से 300 वर्ष पूर्व था। परन्तु शातकर्णी प्रथम शताब्दी ई.पू. के चौथे चरण का ही हो सकता है, क्योंकि 30 ई.पू. में कण्वों का राज्य समाप्त हुआ जिसके पश्चात् ही सिमुक सातवाहन का स्वतंत्र रूप से राज्य प्रारम्भ हुआ होगा।

एन.एन. घोष के अनुसार खारवेल का पाँचवा वर्ष 14 ई.पू. होगा तथा राय चौधरी के अनुसार 25 ई.पू. होगा[25]।

डी.सी. सरकार शात अंकित वाले सिक्कों का उल्लेख करते हैं तथा उनके अनुसार ये पश्चिमी मालव में या तो सिमुक द्वारा या फिर शातकर्णी द्वारा जारी किये गये[26]। वे इस बात की भी संभावना तीव्र रूप से व्यक्त करते हैं कि सिमुक सातवाहन के

राज्य की उत्तरी सीमा पूर्वी तथा पश्चिमी मालव दोनों रही होगी[27]। परन्तु तथ्य यह है कि यदि 57 ई.पू. विक्रमादित्य का काल मानें, तो इस समय कोई भी बहुत शक्तिशाली साम्राज्य मालवा में नहीं था। सिमुक स्वयं ही कमजोर कण्वों के अन्तर्गत था तथा उनके उन्मूलन के पश्चात् एकाएक इतना शक्तिशाली नहीं हो गया होगा। ऐसी परिस्थिति में उज्जयिनी में एक प्रबल मालव गणराज्य के अधिनायक विक्रमादित्य की प्रबल संभावना होती है, जिनको उपर्युक्त उल्लिखित साहित्यिक आदि साक्ष्य भी प्रमाणित करते हैं ।

डी. सी. सरकार स्वयं मालवगण के कुछ सिक्कों को प्रथम शताब्दी ई.पू. में मानते हैं[28]।

अजयमित्र शास्त्री के अनुसार मालव गणराज्य के अधिकांश सिक्कों की तिथि प्रथम शताब्दी ई.पू.ही है। यह सिक्के चौथी शताब्दी ई. तक के प्राप्त होते हैं , जिनमें मालवानां जयः लेख है[29]।

इन सिक्कों के अतिरिक्त अजीबोगरीब लेखों वाले सिक्के हैं , जिनमें मगज, मगजव, मजुप आदि लेख हैं जिनके विषय में बहुत विवाद है। कुछ विद्वान् इन्हें मालवा के ही मानते हैं तथा अन्य विद्वान् शकों के। पी.के. जायसवाल तथा के.के. दासगुप्ता इन्हें मालव गणराज्य से ही सम्बन्धित मानते हैं[30] तथा के.डी.बाजपेयी शकों के[31]। दोनों ही स्थितियों में विक्रमादित्य की परम्परा को बल मिलता है।

यदि यह शक सिक्के हैं, तो भी जैन पट्टावलियों का उल्लेख प्रमाणित होता है जिसके अनुसार गर्दभिल्ल के पश्चात् कुछ काल के लिए शकों का उज्जयिनी में आधिपत्य हुआ। फिर विक्रमादित्य का शासन आया। अतः मालव गणराज्य चौथी शताब्दी ई.पू. में पंजाब में थे। बाद में वे राजस्थान में प्रयाण कर गये। इसके पश्चात् मालवा में उनका अधिपत्य हुआ। उनका गणनायक विक्रमादित्य था जिसका साक्ष्य साहित्यिक, अभिलेखिक, मौद्रिक तथा परम्परा से स्पष्ट होता है।

सन्दर्भ -

1 साचाऊ ई., अलबरुनीज इंडिया II पृ. 6

2 अल्तेकर द्वारा संपादित, एपिग्राफिया इंडिका भाग XXVIपृ. 118-25

3 वही XXVI,पृ. 120

4 वही XXIII, पृ. 52

5 शास्त्री अजयमित्र, सम ऑब्जरेवशन्ज ऑन द ओरिजिन इण्ड अर्ली हिस्टी ऑफ द विक्रम एरा, प्राच्य प्रतिभा XVIII 1996-97 पृ. 3

6 फ्लीट, कार्पस, इंस्कृप्शनम् इंडिकेरम, भाग 3

7 इंडियन एंटिक्वेरी XII पृ. 155, पंक्ति-1

8 शास्त्री अजयमित्र, सम ऑब्जरेवशन्ज ऑन द ओरिजिन इण्ड अर्ली हिस्टी ऑफ द विक्रम एरा, प्राच्य प्रतिभा XVIII 1996-पृ. 4

9 पांडे राजबली, विक्रमादित्य पृ. 27-28।

10 राजशेखरसूरिकृत प्रबन्धकोष, मेरुतुंग की प्रबन्धचिंतामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह (अज्ञात लेखक), इन्द्रसूरि का विक्रमचरित, पूर्णचन्द्रसूरिकृत विक्रम पंच दण्ड प्रबन्ध, देवमूर्ति का विक्रम चरित्र, क्षेमंकर की सिंहासनद्वात्रिंशिका।

11 राजपुरोहित भगवतीलाल, आदि विक्रमादित्य, पृ. 14

12 नर्वी सदी, किन्तु डॉ. ए.एन.राय इसे गुप्त काल का ही मानते थे।

13 राजपुरोहित भगवतीलाल, आदि विक्रमादित्य पृ. 96

14 स्टडीज इन एन्श्येन्ट इंडियन हिस्टी, 1984, पृ. 115-29

15 द विक्रम ऐरा कमेमरेटिव एसेज प्रेसेंटिड टू सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, पुणे 1917, पृ. 187।

16 जे. आर. ए. एस. 1914 तथा 1932।

17 केम्ब्रिज हिस्टी ऑफ इंडिया-1, पृ. 515, 525

18 शास्त्री अजयमित्र द्वारा उध्दृत प्राच्य प्रतिभा 1996-97, पृ. 14-15.

19 द विक्रम संवत्, विक्रम वाल्यूम पृ. 557-86, एंश्येट मालवा एण्ड द विक्रमादित्य टेडिशन, दिल्ली, 1969, पृ. 163

20 शास्त्री अजयमित्र प्राच्य प्रतिभा 1996-1997, पृ. 23-24

21 सरकार डी.सी., एंश्येन्ट मालव एण्ड द विक्रमादित्य टेडिशन, पृ. 67

22 वही, पृ. 67, राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्टी ऑफ एश्येंट इण्डिया 60-37 ई. पू. मानते हैं। पृ-366

23 वही पृ. 367

24 अर्थशास्त्र 2.14.1, पांडे सुस्मिता, अर्थशास्त्र और शिल्पी, शिल्पियों के गौरवशाली इतिहास में पृ. 203, संपादक रामकुमार अहिरवार

25 घोष एन.एन., अर्ली हिस्टी ऑफ इण्डिया, ओमप्रकाश द्वारा संपादित पृ. 264, राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्टी ऑफ एश्येंट इण्डिया पृ. 370-371।

घोष (संपा. ओमप्रकाश) 300 को पारम्परिक संख्या मानते हुए उसमें 20 जोड़ते हैं तथा राय चौधरी 10 जोड़ते हैं।

26 सरकार डी.सी., एंश्येन्ट मालव एण्ड द विक्रमादित्य टेडिशन, पृ. 67-69

27 वही, पृ. 68

28 द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ. 163
बेला लाहिरी, इंडीजनस स्टेट्स ऑफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता, 1974, पृ. 268

29 शास्त्री अजयमित्र, प्राच्य प्रतिभा, पृ. 31

30 गोयल श्रीराम, द लाइनेज ऑफ एंश्येंट इंण्डिया, पृ. 172

31 बाजपेयी के.डी., जे.एन.एस.आई XXVIII, 1 पृ. 46-50

विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता-पुरातत्त्व सन्दर्भ

डॉ. जगन्नाथ दुबे

इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में विक्रमादित्य नामक सम्राट् भारत का शासक था। संस्कृत साहित्य में उससे सम्बन्धित अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं, जैसे कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी आदि। जैन परम्परानुसार कालकाचार्य कथानक से यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व पहली शती में शकों (सिथियन) का मालवा पर आक्रमण हुआ था। उस समय उज्जैन में गर्दभिल्ल नामक राजा राज्य करता था। उसने जैन मुनि कालकाचार्य की संन्यासिनी भगिनी को जबरदस्ती से अपने अन्तःपुर में रखा। तब कालकाचार्य सिन्ध प्रांत के शकों के पास गया और उनकी सहायता से उसने गर्दभिल्ल की हत्या की। उसके बाद शकों का अधिकार उज्जयिनी पर केवल चार वर्ष रहा। तत्पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने उन्हें खदेड़कर ईसा पूर्व 57 में अपना संवत् प्रारम्भ किया। डॉ. अल्तेकर को यह परम्परागत कथा सम्भवनीय लगती थी -

शकानां वंशमुच्छिद्य कालेन कियतापि हि।
राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमोपमो भवत्॥
स चोन्नतमहासिध्दिः सौवर्णरूपोदयात्।
मेदिनीमनृणां कृत्वा चक्रिरे वत्सरं निजम्॥

मत्स्य पुराण में यह वर्णन है-

सप्त गर्दभिल्ला भूपो भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम्।

अर्थात् सात गर्दभिल्ल भूप पृथ्वी का उपभोग करेंगे।

कालकाचार्य कथानक में प्रस्तुत घटना शकों के मालवा पर आक्रमण की है। स्टेनकोनोव ने "खरोष्टी इन्स्क्रिप्शन्स" की भूमिका में प्रथम सदी ईसा पूर्व में मालवा पर आक्रमण हुआ था, इसका वर्णन किया है[2]। भारत के शक-साम्राज्य के इतिहास का पुनर्निर्माण इस प्रकार किया जा सकता है -

ईसा पूर्व 88 में मिथ्रडेट्स द्वितीय की मृत्यु से कुछ समय के पश्चात् ही सीस्तान के शकों ने अपने आपको पार्थिया से स्वतंत्र कर लिया और उस विजययात्रा का प्रारम्भ कर दिया जिसने उन्हें सिन्धुनद के देश पहुँचा दिया। तत्पश्चात् ईसा पूर्व 60 के लगभग शकों ने अपना साम्राज्य उस प्रदेश तक बढ़ा लिया था जिसे कालकाचार्य कथानक में हिन्दुक देश कहा गया है (सिन्धु नद का निचला प्रदेश) और उसके पश्चात् काठियावाड़ और मालवा की ओर अग्रसर हुए। यहाँ 58-57 ईसा पूर्व में विक्रमादित्य ने उनका उन्मूलन किया और अपनी इस विजय के उपलक्ष्य में अपने संवत्सर का प्रवर्तन किया। रेप्सन ने भी इस कथा की घटनाओं के विश्वसनीय होने के विषय में अपना मत प्रदर्शित किया है[3]। नारमन ब्राउन ने भी अपने कालकाचार्य कथानक की भूमिका में इसकी घटनाओं की ऐतिहासिकता को स्वीकार किया है।

प्रथम सदी ईसा पूर्व में विक्रमादित्य उज्जयिनी में शासनरत था। उल्लेखनीय है कि साहित्यिक प्रमाणों के साथ वर्तमान में ऐसे पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं जिससे विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता, उसका तिथिक्रम, विक्रम संवत् तथा नाम

सम्बन्धी घटनाओं की प्रामाणिकताओं की पुष्टि हुई है।

उज्जयिनी एवं विदिशा क्षेत्र से प्राप्त पाँच शक–शासकों यथा हमुगम, सउमश, वलाक, महु और दास की ताम्र मुद्राओं को आचार्य कृष्ण दत्त वाजपेयी ने लिपि और प्रतीकों के अध्ययन के आधार पर क्षहरात भूमक के पूर्व शक–शासकों के रूप में समीकृत करने की घोषणा की है[4] तथा इनका तिथिक्रम प्रथम सदी ईसा पूर्व निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

मुद्राविद् माइकेल मिशिनर ने भी इन शासकों का शासन काल 60 ईसा पूर्व निर्धारित कर इन्हें मालव मुद्राओं पर अंकित के समान बताया है[5]। इन मुद्राओं पर मालवा की पूर्ववर्ती ढली ताम्र-मुद्राओं पर अङ्कित चिह्न जैसे मेंढक, अर्द्धचन्द्र युक्त त्रिमेरु , चैत्य वृक्ष और द्वि-वृत्त उज्जयिनी चिह्न अंकित है। मालव पर शक आक्रमण की भीषणता को युगपुराण में भी रेखांकित किया गया है। ये शक-शासक कुछ वर्षों तक शासन करते रहे, फिर उन्हें विक्रमादित्य ने पराजित कर विजयोपरान्त उपलक्ष्य में संवत् प्रचलित कर वह शकारि उपाधि से विभूषित हुआ।

महाराजा विक्रमादित्य कालीन पुरातात्त्विक साक्ष्य –

1) महाराजा विक्रमादित्य कालीन अँवलेश्वर शिलालेख चौकी पर -

मंदसौर (दशपुर से लगभग 18 किलोमीटर की दूरी पर अँवलेश्वर नामक स्थल) के समीप एकाश्म स्तम्भ तथा स्तम्भ के अधोभाग पर स्थित[6] चौकी पर दाहिनी ओर बायीं ओर प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में लेख अङ्कित है। उसमें से एक पर लेख इस प्रकार है -

1) वेदम्म कद ज इ प्रविध्रेमगज
2) दत विक्रमादित्य ..... जयति उदकेन प्रदत्त
3) नृ कुद भग
4) जलाशया जलं एकेह सर्व्वानेत्व

इस अभिलेख में विक्रमादित्य नाम के साथ ही जलाशय तथा उसके जल का समस्त जनों द्वारा उपयोग का उल्लेख है।

2) विक्रमादित्य नामाङ्कित विविध प्रकार की मुद्राएँ भी वर्तमान में प्रकाश में आई हैं। कतिपय मुद्राएँ उसके समकालीन और लेखसहित हैं। उनका वर्णन निम्नलिखित है –

विक्रमादित्य नामाङ्कित मुद्राएँ[7] -

1) धातु-ताम्र, आकार : गोल

प्रथम प्रकार : श्री विक्रम एवं उजयिनी नगर नामाङ्कित अश्वमेध प्रकार की दुर्लभ मुद्रा-पुरो भाग : वृत्तायत बिन्दुओं के मध्य दाहिनी ओर पंखयुक्त गति शील अश्व का अङ्कन है।

पृष्ठ भाग :– मुद्रा के मध्य में वेदिका वृक्ष उसके दाहिनी ओर ब्राह्मी लिपी में लेख (सि) रि (ि) वक्रम तथा व अक्षर और मात्रा का ऊपरी भाग मुद्रा के किनारे से बाहर हो गए हैं । मुद्रा के बाईं ओर ब्राह्मी लिपि में लेख उजयि (नी) नगर नामाङ्कित है।

अश्वमेध प्रकार की यह मुद्रा उल्लेखनीय है । विक्रमादित्य के पूर्व भी ईसा पूर्व दूसरी सदी में शुंग शासक सेनापति पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध (यज्ञों) का आयोजन किया था। आन्ध्र–सातवाहन शासक सातकर्णिऔर नागनिका की चाँदी की मुद्रा पर दोनों का नाम ब्राह्मी लिपि में तथा उस पर अश्व का अङ्कन है। विद्वानों के मतानुसार यह चाँदी की मुद्रा सातकर्णि ने अश्वमेध

यज्ञ के आयोजन के समय प्रचलित की होगी। विक्रमादित्य ने भी उसी परम्परा में अश्वमेध के आयोजन के समय यह अश्वमेध प्रकार की मुद्रा अपने नाम व राजधानी उज्जयिनी से जारी की होगी इससे यह सुस्पष्ट है कि विक्रमादित्य चक्रवर्ती सम्राट् थे। अश्वगति शक्ति का प्रतीक है।

2) दूसरा प्रकार–विक्रम नामाङ्कित शिव प्रकार की ताम्र–मुद्राएँ

i) पुरोभाग : समभंग मुद्रा में सम्मुखाभिमुख मानवीय रूप में जटा–मुकुट, दण्ड-कमण्डलु धारण किये खड़े हुए शिव, उनके दाहिनी ओर ब्राह्मी लिपि (प्रथम सदी ईसा पूर्व) में राजा विक्रम लेख बाईं ओर वेदिका वृक्ष अंकित है।

पृष्ठ भाग : उज्जयिनी चिह्न केवल एक द्विवृत्त।

ii) ताम्र–मुद्रा, वृत्ताकार, शिव प्रकार[8]।

पुरोभाग : द्विभंग मुद्रा में जटा–मुकुट तथा दण्ड कमण्डलु धारण किये खड़े हुए शिव, उनके दाहिनी ओर ब्राह्मी लिपि (प्रथम सदी ईसा पूर्व) में लेख राजा विक्रम नामाङ्कित है।

इन मुद्राओं के प्रमाण से विक्रमादित्य शैवोपासक ज्ञात होते हैं ।

3) तीसरा प्रकार : ताम्र–मुद्रा, वृत्ताकार-चक्र प्रकार[9]

पुरोभागः द्वादश अरों युक्त चक्र अङ्कित है।

पृष्ठ भाग : मुद्रा के मध्य में प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में लेख विक्रम और मुद्रा के निम्न भाग में परवतन्द व कदस (पर्वतेन्द्र, कृतस्य) ब्राह्मी लिपि में अङ्कित है।

4) चौथा प्रकार–ताम्र–मुद्रा, वृत्ताकार, कमल प्रकार

i) पुरोभाग : षड्दल कमल अङ्कित है।

पृष्ठ भाग : ब्राह्मी लिपि में कृद (कृतस्य) लेख अङ्कित है।

ii) पुरोभाग : अष्टदलकमल अङ्कित है।

पृष्ठ भाग -ब्राह्मीलिपि में कतस (कृतस्य) अंकित है।

लेखरहित सूर्यध्वज प्रकार[10]

पुरोभाग : सूर्य ध्वज धारण किये दक्षिणाभिमुख खड़ी मानवाकृति, उसके दाहिनी ओर वेदिका वृक्ष अंकित है।

पृष्ठ भाग : बिन्दुयुक्त एक वृत्त उज्जयिनी चिह्न अंकित है। उज्जयिनी मुद्राओं पर अङ्कि त सूर्यध्वज धारित मानवाकृति के सम्बन्ध में विन्सेण्ट स्मिथ महोदय का मत विचारणीय है। उनके मतानुसार दो सम्भावनाएँ हो सकती हैं, या तो यह शासक की आकृति अथवा देवाकृति हो सकती है। यदि यह स्थानीय शासक की आकृति है तो वह स्पष्ट रूप से परमादित्य भक्त प्रकट होता है जो दाहिने हाथ में सूर्यध्वज धारण किए हुए है। अत एव स्वाभाविक रूप से यह शासक सूर्य का एकनिष्ठ भक्त (परमसौर) तथा यह दण्ड सूर्यध्वज के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इन मुद्राओं का तिथिक्रम द्वितीय शती ईसा पूर्व से लेकर प्रथम शती ईसा पूर्व माना गया है। उल्लेखनीय है कि प्रथम सदी ईसा पूर्व में शकारि विक्रमादित्य नामक प्रतापी शासक शासनरत था। शकों पर विजय स्वरूप उसने अपना राज्यांक सूर्यध्वज मान्य कर अपना स्वयं का अङ्कन इन मुद्राओं पर करवाया होगा।

मालव गणराज्य की तृतीय प्रकार की मुद्राओं पर अङ्कि त बीस नामों को आर.ओ. डगलस, के.के.चक्रवर्ती और कल्याणकुमार दासगुप्ता ने मालवगण प्रमुखों का माना है[11]। डी.आर. भण्डारकर का सुझाव है कि जिन मुद्राओं पर ब्राह्मी में मगज

लेख है, वह मालव गणस्य जयः अर्थात् मालवगण की विजय के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा संक्षिप्त नाम है। इस प्रकार मालवगण की अन्य मुद्राओं पर अङ्कित नामों पर भी विचार किया जा सकता है जैसे गजव अर्थात् गणस्य जय विक्रम और मगोजव या मगजव मालव गणस्य जय विक्रम का ही संक्षिप्त रूप है। इन मुद्राओं पर मालवगणों ने प्रतापी सम्राट् विक्रमादित्य का नाम संक्षिप्त रूप में अङ्कित करवा दिया होगा।

सन् 1975 में सुप्रसिद्ध पुराविद् डॉ. वि.श्री. वाकणकर को गढ़कालिका (उज्जैन) से एक पकी मिट्टी की सील प्राप्त हुई थी[12], जिस पर वृत्तायत रूप में राज्ञो सिरि..... कतस उजेनीय ब्राह्मी लिपि में लेख किनारे पर तथा उसके मध्य में मकार युक्त स्वस्तिक प्रतीक अंकित है। इस सील पर अङ्कित ब्राह्मी लिपि ईसवी पूर्व प्रथम सदी की है। उज्जयिनी परिक्षेत्र से स्वस्तिक मकार युक्त ढली हुई अनेक ताम्र मुद्राएँ सम्प्रति डॉ. वाकणकर शोध संस्थान, उज्जैन में संग्रहीत हैं। अन्य मिट्टी की सील पर ईसा पूर्व प्रथम सदी की ब्राह्मी लिपि में कुतस लेख अङ्कित है। लेख के निम्न भाग में मत्स्यसरित चिह्न है। प्राकृत शब्द कुतस का संस्कृत रूप कृतस्य होता है। सील व ताँबे की मुद्राओं पर अङ्कित मकार युक्त स्वस्तिक माङ्गलिक प्रतीक है तथा सील पर अङ्कित ब्राह्मी लिपि लेख राज्ञो सिरि कतस उजेनिय से यह तथ्य प्रकट होता है कि विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर अपने कृत संवत् का प्रवर्तन किया।

अभिलेखों से प्राप्त साक्ष्य –

अभिलेखों में सर्वप्रथम सात अभिलेखों में संवत् 282 से 481 तक इसे कृत संवत् कहा गया, नौ अभिलेखों में संवत्461 से 936 तक इसे मालव संवत् और संवत् 794 से 1293 तक विक्रम संवत् कहा गया है। (35 अभिलेखों में)। मालव संवत् को कृत की संज्ञा मंदसौर के संवत् 461 के अभिलेख में दी गई है, वह इस प्रकार है-श्रीमालव गणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते[13]। इस अभिलेख के पश्चात् कतिपय अभिलेखों जैसे संवत् 770 चित्तौड़गढ़ (राजस्थान प्रदेश) अभिलेख[14] में मालवेश–संवत्सर, संवत् 795 के कणस्व (राजस्थान प्रदेश) अभिलेख[15] में मालवेशनाम् और संवत् 1226 मेनोलगढ़ (राजस्थान प्रदेश) अभिलेख[16] में मालवेश-वत्सर नाम से उल्लेख है। विक्रम संवत् वर्णित 35 अभिलेखों में से कतिपय प्रमुख अभिलेख जिनमें विक्रम संवत् का प्रवर्तन करने वाले विक्रमादित्य के नाम का उल्लेख है। संवत्।।3। नवसारी (गुजरात प्रदेश) कर्णराज व दुर्लभराज का अभिलेख[17], श्रीविक्रमादित्योत्पादित संवत्सर।2 संवत्।।6। ग्वालियर (मध्यप्रदेश) अभिलेख[18] में श्रीविक्रमार्क नृप कालातीत संवत्सर (3) संवत् 1176 सेवाड़ी (राजस्थान प्रदेश) रत्नपाल के अभिलेख[19] में श्री विक्रमादित्योत्पादितातीतसंवत्सर। और संवत् 1195 उज्जैन (मध्यप्रदेश) जयसिंह के अभिलेख[20] में विक्रम नृप-कालातीत संवत्सर उल्लिखित है। उपर्युक्त उद्वर्णित अभिलेखों से यह सुस्पष्ट है कि कृत, मालव एवं विक्रम एक ही संवत् के नाम हैं। सल्तनतकालीन मुस्लिम शासक इल्तुतमिश (1210 से 1236) के शासन काल की एक मिश्रित धातु (विलन) मुद्रा[21] के पृष्ठ भाग पर उसका नाम देवनागरी लिपि में, इलितितिमि (इल्तुतमिश) मुद्रा के मध्य में, निम्न भाग में वि.सं. और मुद्रा के ऊपरी भाग के किनारे पर अरबी के अंकों में 1283 अर्थात् 1226 ई. अङ्कित है।

निष्कर्ष –

1) विक्रमादित्य का नाम लोक-साहित्य और लोक धारा में सर्वत्र व्याप्त है। विक्रमादित्य ने बौध्द, जैन, संस्कृत यहाँ तक कि अरबी-फारसी साहित्य को भी अनुप्राणित किया है।

2) कालकाचार्य कथानक, कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ और मालवा (उज्जयिनी और विदिशा क्षेत्र) से उपलब्ध शक–शासकों की मुद्राओं से यह प्रमाणित है कि विक्रमादित्य शकों के वंश का उन्मूलन (शकानां वंशमुच्छेद्य) कर शकारि उपाधि से विभूषित हुए।

3) प्राचीन साहित्य, वर्तमान में उपलब्ध विविध प्रकार की मुद्राओं और अभिलेखों से नवीन सामग्री प्रकाश में आयी है। कालकाचार्य कथानक में विक्रमादित्य को सार्वभौम राजा श्री कहा गया है । विक्रमादित्य नामाङ्कित विविध प्रकार की मुद्राओं जैसे अश्वमेध प्रकार की मुद्रा के पृष्ठ भाग पर विक्रम व उज्जयिनी नगर का नाम एक साथ ही अङ्कित है। एक अन्य द्वादश अरों युक्त चक्र प्रकार की मुद्रा के पृष्ठ भाग पर मुद्रा के मध्य में विक्रम नाम व उसके निम्न भाग में परवतन्द्र(पर्वतेन्द्र) और कद(कृतस्य) नामाङ्कि त है। अभिलेखों में श्री विक्रमार्क नृपकाल, श्री नृप, विक्रम संवत् और श्रीमद् विक्रम नृप काल का उल्लेख है। इन समस्त संसाधनों यथा प्राचीन साहित्य, मुद्राओं और अभिलेखों से इस कथन की पुष्टि होती है कि विक्रमादित्य सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् थे, व सार्वभौम उज्जयिनी नगर उनकी राजधानी थी। उन्होंने अश्वमेध का आयोजन इसी नगर में किया था।

4) राजा विक्रम नामाङ्कित दो मुद्राओं पर जटा-मुकुट और दण्ड-कमण्डलु धारण किए हुए शिव का अङ्कन है। शिव के साथ ही शासक का नाम अङ्कित होने से यह प्रकट कि वे परम शैवोपासक थे।

5) सूर्यध्वज धारी शासक की आकृति से यह प्रतीत होता है कि सूर्य ध्वज उनका राज्य चिह्न रहा हो।

6) अभिलेखों में वर्णित तीनों संवतों के सम्बन्ध में अभिलेखों के पाठों का एक साथ अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि कृत, मालव और विक्रम संवत् एक ही हैं । द्वादश अरों युक्त चक्र प्रकार की मुद्रा के पृष्ठ भाग पर विक्रम नाम के साथ ही कदस (कृतस्य) नाम अङ्कित है, और दो अन्य मुद्राओं षट्दल कमल तथा अष्टदल कमल प्रकार की मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर कृद (कृत) और कतस (कृतस्य) नाम अङ्कित है। उज्जयिनी से प्राप्त मिट्टी की दो सीलों पर कतस उजेनिय व कुतस (कृतस्य) लेख उत्कीर्ण है । इस प्रकार अभिलेखों, मुद्राओं और सीलों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि कृत संवत् का प्रवर्तन विक्रमादित्य ने ही किया था, कालान्तर में वह मालव और विक्रम नाम से प्रचलित हुआ और वह आज भी भारत में सुविख्यात है। यह हमारे विक्रमादित्य की स्मृति है। एक अन्य मुद्रा पर विक्रम संवत् का नाम उल्लेखनीय है।[22]

विक्रमादित्य की कीर्ति ने कई शासकों को प्रभावित किया। ईसा पूर्व पहली सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक कई विक्रमादित्य नामधारी व उपाधि युक्त राजा हुए। विक्रमादित्य के अस्तित्व ने इतिहास को बहुत ही प्रभावित किया, उसका सभी कुछ भारतीय नरेशों के लिए ही नहीं वरन् विश्व के लिए अनुकरणीय आदर्श बन गया। विन्सेण्ट स्मिथ को यह स्वीकार करना पड़ा-इस नरेश के अतिरिक्त भारत कभी भी इतना सुशासित नहीं हुआ। इतिहास में विक्रम एक जाज्वल्यमान नक्षत्र सिद्ध हुआ है।

सन्दर्भ –

1. एपिग्राफिया इंडिका भाग 14, पृष्ठ 293-295 (कालकाचार्य कथानक)
2. स्टेनकोनोवः खरोष्ठी इन्स्क्रिप्शन की भूमिका, कथानक पृष्ठ 26
3. रेप्सन, ई.जे., केम्ब्रिज हिस्टी ऑफ इंडिया भाग 1, पृष्ठ 532
4. जॅर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया, भाग XXVIII पृष्ठ 48-50

5. माईकल मिशिनर : इण्डो-ग्रीक, इण्डो सीथियन क्रायनेज, पृष्ठ 805
6. भारतीय अभिलेखः सम्पादक डॉ. जे.एन.दुबे एवं डॉ.भगवतीलाल राजपुरोहित, पृष्ठ 21
7. एक तथा दो प्रकार की मुद्राएँ सम्प्रति अश्विनी मुद्राशोध संस्थान, महिदपुर में संग्रहीत हैं।
8. उज्जयिनी क्रायन्सः सम्पादक दिलीप राजगोर, पृष्ठ 83
9. तीसरे एवं चौथे प्रकार की ताम्र मुद्राएँ स्व. शांतिलाल परदेशी के व्यक्तिगत मुद्रा संग्रह इन्दौर में संग्रहीत और एच.वी.त्रिवेदी द्वारा अपठित प्रकाशित
10. विन्सेण्ट स्मिथः इंडियन म्यूजियम क्वायन्स, भाग 1, कलकत्ता, पुष्ठ 153
11. जॅर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया, XXVIII भाग जिल्द II पृष्ठ 204, वही, भाग XXIX जिल्द II पृष्ठ 79
12. उपर्युक्त , XLVII जिल्द II पृष्ठ 93
13. भण्डारकर सूची क्रमांक 3
14. भण्डारकर सूची क्रमांक 16
15. भण्डारकर सूची क्रमांक 18
16. भण्डारकर सूची क्रमांक 346
17. प्लेट्स-भण्डारकर सूची क्रमांक 141
18. अभिलेख–भण्डारकर सूची क्रमांक 169
19. प्लेट्स - भण्डारकर सूची क्रमांक 200
20. भग्न अभिलेख-भण्डारकर सूची क्रमांक 240
21. अमितेश्वर झाः भारतीय सिक्के एक ऐतिहासिक परिचय, पृष्ठ 90, मुद्रा क्रमांक 409
22. डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित और डॉ. जगन्नाथ दुबे- पुरातत्त्व में विक्रमादित्य, महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन, 2012

विशेष – इस अंक के छपने तक विक्रम तथा कृत और दोनों संयुक्त नाम के अनेक सिक्के और मुद्राएँ ज्ञात हो चुकी हैं जिनका परिचय आगामी अंक में प्रकाशित होगा। ये सिक्के और मुद्राएँ श्री अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर (उज्जैन) में सुरक्षित हैं जिसके अध्यक्ष डॉ. आर.सी. ठाकुर हैं। (संपादक)

विक्रमादित्य का सभासद–मूलदेव एवं विपुला और अचला

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

धूर्त मूलदेव सम्बन्धी कई प्राचीन कथाएँ सदियों तक प्राप्त होती रही हैं। वह उज्जैन के राजा विक्रमादित्य का सभासद बताया गया है। बृहत्कथा जैसे पैशाची अनार्षकाव्य में मूलदेवचरित की चर्चा नाट्यशास्त्रटीका में अभिनवगुप्त ने की है। कथासरित्सागर के विषमशील लम्बक और वेतालपंचविंशति में मूलदेव की कथाएँ हैं। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी के भी उन्हीं प्रसंगों में मूलदेव की कथाएँ हैं। उन कथाओं से भी उसकी धूर्तता ही प्रकट होती है। उन कथाओं में मूलदेव के साथ उसके मित्र शश या शशी की भी चर्चा पायी जाती है।

चतुर्भाणी में सम्मिलित शूद्रक के पद्मप्राभृतक भाण में उज्जैन के मूलदेव और उसके मित्र शश की निरन्तर उपस्थिति है। उसमें नायक शश अपने मित्र मूलदेव की कार्यसिद्धि के लिए निरन्तर सक्रिय रहता है। उसमें भी ये दोनों धूर्त हैं। परवर्ती बाणभट्ट की कादम्बरी, भोज की श्रृंगारमंजरीकथा सहित धूर्ताख्यान आदि में भी वह उपस्थित हैं। शूद्रक के पूर्वोक्त भाण में मूलदेव, शश और मूलदेव की प्रेमिका गणिका विपुला की चर्चा है और इन तीनों का एक साथ उल्लेख कादम्बरी में भी है।

मूलदेव को कर्णीपुत्र, धूर्त और चोरों का प्रधान भी बताया गया है। वह पाटलिपुत्र (पटना) का निवासी था और उसका कार्यक्षेत्र उज्जैन था। कथासरित्सागर के अनुसार उसकी एक धूर्त पत्नी वर्धमानपुर की थी, जो आजकल धार जिले का तहसील स्थान बदनावर नामक कस्बा है। वह छिपकर उज्जैन में धूर्ताचार्य मूलदेव को भी छलकर पाटलिपुत्र (पटना) में जा बसी थी।

राजा पुरुषोत्तमदेव के त्रिकाण्डशेष कोष (2/8/23) में मूलदेव को कर्णीसुत, मूलदेव, मूलभद्र और कलांकुर कहा गया है-

कर्णीसुतो मूलदेवो मूलभद्रः कलाङ्कुरः।

एक विचार यह भी है कि मूलदेव चोरशास्त्रकार खरपट से अभिन्न है। भास के चारुदत में खरपट का उसी रूप में स्मरण किया गया है। खापर्या चोर और विक्रमादित्य की कथाएँ मालवा में प्रसिद्ध हैं। खरपट्ट के चौर्यशास्त्र का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र (4/8/23) में भी हुआ है। गण (2/156)में भी उसका उल्लेख बताया जाता है। धूर्ताख्यान, दशकुमारचरित सहित कितने ही ग्रन्थों में मूलदेव का स्मरण किया गया है।

शश नामक राजा की मुद्राएँ प्रकाशित हैं, जिन पर ईसवी पूर्व की ब्राह्मी लिपि में 'सस' लिखा गया है। मध्यप्रदेश के मन्दसौर के पास के अँवलेश्वर ग्राम में एक स्तम्भ पर ईसवी पूर्व की ब्राह्मी लिपि में दो लेख उत्कीर्ण हैं, जिसमें से एक में राजा विक्रमादित्य और दूसरे में शश का उल्लेख पाया जाता है।

उज्जैन की विपुला का दानलेख साँची के स्तूप पर ईसवी पूर्व की ब्राह्मी में पाया जाता है। यह सम्भव है कि यह विपुला मूलदेव की वह गणिका प्रेमिका ही हो जिसकी चर्चा पद्मप्राभृतक भाण में की गयी है। वहाँ अचला के लेख भी हैं। अयोध्या में सन् 1975 से 1977 तक उत्खनन हुआ था। उसमें से ईसवी पूर्व की ब्राह्मी में 'मूलदेव' नाम वाले सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनके पुरोभाग पर दक्षिणमुखी वृषभ के साथ कहीं ध्वजदण्ड और कहीं तीन चाप का चैत्य है। पीछे उज्जयनी चिह्न और वेदिका वृक्ष है। लेख

है - मूलदेवस। ईसवी पूर्व की ऐसी ही लिपि वाली सील महिदपुर में आर. सी. ठाकुर के संग्रहालय में है जिस पर मूलदेवस लिखा है।

श्री विष्णु करन्दीकर ने मध्यप्रदेश के खरगोन जिले के कसरावद में 1936 और 1938 में जो उत्खनन किये थे, उनसे प्राप्त पात्रों पर विभिन्न अनेक नाम पाये जाते हैं। उनमें से एक पात्र पर ईसवी पूर्व की ब्राह्मी में 'मूलदेवे' नाम भी मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि मूलदेव ईसवी पूर्व प्रथम शती के विक्रमादित्य का समकालीन था और प्राचीन कथाओं के अनुसार उसका उज्जैन और पाटलिपुत्र (पटना) दोनों से सम्बन्ध था। पटना उसका जन्मस्थान और उज्जैन कार्यस्थान था। जैन परंपरानुसार वह राजा था। वह गान्धर्वादि कलाओं में प्रवीण था। प्राकृत कथासंग्रह (अहमदाबाद) के अनुसार उसने देवदत्ता गणिका को गान्धर्वविद्या में हराया था। चतुर्भाणी में देवदत्ता मूलदेव की प्रेमिका है। सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य को राजा मूलदेव की कथा सुनाई थी। अतः यह श्रोता विक्रमादित्य बाद का चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था।

परम्परानुसार मूलदेव का अन्य नाम खरपट भी था। खरपट द्वारा विरचित चौरशास्त्र ग्रन्थ की सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। मूलदेव द्वारा विरचित एक श्लोक कथासरित्सागर में प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है –

अन्यच्च मूलदेवोक्ता गाथा किं न श्रुता त्वया।
यत्र घनस्तनजघना नास्ते मार्गविलोकिनी कान्ता।
अजडःकस्तदा निगडं प्रविशति गृहसंज्ञकं दुर्गम्॥

–कथासरित्सागर 12/31/31-32

मूलदेव के अनुसार घर वही है जिसमें भार्या हो अन्यथा वह बिना भागरे का दुर्ग है।

सात सौ ईसवी के लगभग रचे गये प्राकृत ग्रन्थ 'स्वयम्भूछन्दस्' (1-60-1, 1-61-1) में ललित और मत्तक्रीडा छन्द के एक एक उदाहरण मूलदेव के रचे उध्दृत किये गये हैं। ये रचनाएँ महाराष्टी प्राकृत में होने से नाट्यशास्त्र के बाद की हैं। क्योंकि नाट्य शास्त्र में महाराष्टी प्राकृत का न तो उल्लेख है और न उदाहारण है। परन्तु विक्रमादित्य के सभारत्न वररुचि द्वारा अपने प्राकृतप्रकाश व्याकरण ग्रन्थ में उसके लक्षण दिये गये हैं। अतः विक्रमादित्य के समय महाराष्टी प्राकृत का उपयोग होता था। उसी समय के कालिदास ने भी महाराष्टी प्राकृत का भी उपयोग किया है। अतः उसी समय के मूलदेव की महाराष्टी प्राकृत में रचना होना सम्भव है। 'स्वयम्भूछन्दस्' में मूलदेव के वे दोनों छन्द इस प्रकार हैं -

(1) ललिअं मूलदेवस्य (ललितं मूलदेवस्य) –
उअह इमं पउत्थवइआइ संदणवचं दणद्दधवलं
करणिमिअं विसण्णवअण तहिंपि तरलामलच्छिजुअलं।
ण हु अरुणुपलम्मि कमसं कआवि कमलम्मि णीलजलअं
इअ परिचिंतिऊण विगअं कहिं पि ण ठिअं चलालिवलअं॥

स्वयम्भूछन्दस्, 1/60/1

(2) मत्ता कीला तस्सेअ (मत्तक्रीडा तस्यैव)-

बध्दा दोला दिट्ठा चूआ महुअरपलपलविरपरहुबहला
उद्दामा पुण्णाआमोआ मअमुइअमिलिअमहुलिहमुहला।
फुल्ला रत्तासोआरामा तह विउलजलकमलसरा
अत्ता पत्तो दुक्खं देंतो विरहिजणमरणमिव महुसमओ॥

वही, 1/61/1

आवश्यकसूत्र (गाथा 464) की टीका में लिपियों की सूची में मूलदेवी लिपि भी है। अ और क, ख और ग, घ और ग, चवर्ग और टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग, य और श इन्हें परस्पर बदल देने पर मूलदेवी बन जाती है।

अकौ खगौ घङौ चैव चटौ तपौ यशौ तथा।
एते व्यस्ताः स्थिराः शेषा मूलदेवीयमुच्यते॥

कामसूत्र, चौखम्बा, पृष्ठ 91

प्राचीन जैन कथाओं में मूलदेव नामक बहुत चतुर और धूर्त नायक पाया जाता है। उत्तरसूत्र टीका में मूलदेव कथा है। उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट है कि मूलदेव सम्बन्धी कथाएँ पहली सदी से ही साहित्यकारों को आकर्षित करती रहीं। उस पर शूद्रक ने पद्मप्राभृतक भाण की रचना की और समय समय पर अन्य भी विभिन्न कथाएँ लिखी गयीं। राजा भोज की श्रृंगारमंजरीकथा में भी तत्सम्बन्धी एक कथा है जिसमें उज्जैन के अद्भुत, प्रख्यात चरित वाले और अपनी भुजाओं से चक्रवर्ती पद अर्जित करने वाले राजा विक्रमादित्य का प्रेमपात्र मूलदेव नामक धूर्त था। वह अत्यन्त चतुर, समस्त पाषण्डों (सम्प्रदायों) का ज्ञाता और सभी कलाओं में कुशल था (पृष्ठ 84)–

अस्त्यवन्तिषु श्रीमत्युज्जयनी नाम नगरी। तस्यामत्यद्भुत प्रख्यातचरितो
निजभुजविक्रमावाप्तचक्रवर्तिपदः क्षितिपतिविक्रमादित्यो नाम। अस्ति च तत्र मूलदेवो नाम धूर्तः।
स च प्रेमैकपात्रमतिविदग्धः। समधिगतनिखिलपाषण्डः सकलकलाकुशलः।

बाणभट्ट ने मूलदेव, शश और विपुला की चर्चा की है। उज्जैन की विपुला का उल्लेख साँची के ईसवी पूर्व के दानदाताओं में भी है और पद्मप्राभृतकभाण में भी मूलदेव की प्रेमिका के रूप में है। इस भाण में ये सब पात्र भी विद्यमान हैं। मूलदेव का उल्लेख दशकुमारचरित, धूर्ताख्यान आदि में भी हुआ है। स्पष्ट है कि धूर्ताचार्य मूलदेव प्रायः एक हजार वर्षों से अधिक समय तक सतत भारतीय साहित्य में उल्लेखनीय बना रहा और वह विक्रमादित्य का अपना विश्वसनीय था। राजा भोज के अनुसार विक्रमादित्य जैसा राजा नहीं, मूलदेव जैसा धूर्तचूडामणि नहीं और कपालशिख जैसा मन्त्रवादी नहीं -

न हि देवसदृशो नृपतिर्नापि मच्छदृशो धूर्तचूडामणिर्नापि कपालशिखेन सदृशो मन्त्रवादी। (श्रृंगारमंजरीकथा, पृष्ठ 88)।

मूलदेव की अपनी रचित पूर्वोक्त एक गाथा पहली सदी की बृहत्कथा के संस्कृत रूपांतर कथासरित्सागर में उध्दृत है। मूलदेव के रचे दो प्राकृत श्लोक सातवीं सदी के स्वयम्भूछन्दस् में पूर्वोक्त उद्धृत हैं। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उसके नाम के पुरातात्त्विक प्रमाण रूप सिक्के और पात्रलेख भी ईसवी पूर्व की ब्राह्मी लिपि में प्राप्त हो गये हैं। यही नहीं इसी समय की मूलदेव की मुद्रा भी प्राप्त है। इस प्रकार समय और परम्परा का तालमेल साहित्य और पुरातात्त्विक प्रमाणों से भी हो जाता है। अतः ईसवी

पूर्व के उज्जैन के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य सन्दर्भित मूलदेव का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है और मूलदेव के प्रमाण उज्जैन के विक्रमादित्य की भी पुष्टि करते हैं ।

मूलदेव की प्रेमिकाएँ–विपुला और अचला

बाणभट्ट की कादम्बरी में कर्णीसुत मूलदेव की कथाओं में विपुला और शश नामक पात्रों की चर्चा की गयी है।

कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला शशोपगता च।

विपुला, अचला और शश वाली कर्णीसुतकथा अलग से तो ज्ञात नहीं, परन्तु शूद्रक के पद्मप्राभृतक में विद्यमान है। उसमें अचला नहीं है। शश और विपुला उसमें विद्यमान है। शश मूलदेव का मित्र है और विपुला मूलदेव की मानवती प्रेमिका। यह विपुला उज्जयिनी की गणिका थी। श्लोक 11 से 16 तक पूरा दृश्य इस विपुला से सम्बन्धित है। वहाँ विपुलामात्य का उल्लेख, है जो कामदत्ता प्राकृत काव्य का प्रतिष्ठानभूत था। सम्भवतः उसका उस काव्य से सम्बन्ध था। या तो वह उस काव्य का रचनाकार था अथवा उसका महत्त्वपूर्ण पात्र था। इस विपुला की सखी अवन्तिसुन्दरी थी।

कर्णीपुत्र मूलदेव उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की सभा का धूर्त सदस्य था। विपुला गणिका उज्जयिनी में रहती थी और मूलदेव की प्रेमिका थी। अतः विपुला भी विक्रमादित्य के समय उज्जैन में रही। उज्जैन की विपुला का उल्लेख साँची के ईसवी पूर्व के दानदाताओं में हुआ है। साँची स्तूप पर विपुला का लेख है। ईसवी पूर्व दूसरी–पहली सदी की लिपि में वहाँ जो लिखा गया है उसका अर्थ है – उज्जयिनी की विपुला। नाम विपुला, स्थान उज्जयिनी और समय ईसवी पूर्व प्रथम शती। इस पुरातात्त्विक प्रमाण और पूर्वोक्त साहित्यिक प्रमाण में एकरूपता होने से एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। अतः पद्मप्राभृतक की विपुला या बाणभट्ट की कादम्बरी में उध्दृत विपुला काल्पनिक नहीं, ऐतिहासिक और वास्तविक रही–यह प्रमाणित होता है और इससे उज्जैन के सुप्रसिध्द विक्रमादित्य के समकालीन उज्जयिनी के पात्रों की भी ऐतिहासिकता सिध्द होने से मूलदेव सम्बन्धी विक्रमादित्य कथाओं की और विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता स्वतः प्रमाणित हो जाती है।

इसी प्रकार बाणभट्ट ने अचला का भी विपुला के साथ स्मरण किया है। इसका उल्लेख चतुर्भाणी में तो नहीं है परन्तु मूलदेवकथा में वह रही होगी। साँची के दानदाताओं में ईसवी पूर्व की विपुला के समान अचला के भी दो बार उल्लेख हुए हैं । वह नन्दिनगर की रहने वाली थी। नन्दिनगर की पहचान आज के नान्देर तहसील गोहरंगज जिला रायसेन अथवा नन्दनगर टोंक के पास के गाँव नन्दनेर से की जाती है।

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विक्रमादित्य की राजधानी और राज्य के नर नारी इतने समर्थ थे कि वे साहित्य के पात्र बन गये और पुरातत्त्विक प्रमाण भी बन गये।

सन्दर्भ -

1 हिस्टी टुडे, भाग 11,2010, पृष्ठ 84
2 कसरावद, डॉ. वि.श्री. वाकणकर, अहिल्याबाई स्मारिका में लेख।
3 साँची, भास्करनाथ मिश्र, पृष्ठ 205
4 वही, पृ. 108 तथा 220

परिशिष्ट

अथ नवीनसंवत्सरप्रवर्तने विक्रमार्कसम्बन्धः–

एकदा सिद्धसेन दिवाकरः श्रीविक्रमादित्यभूपस्याग्रे दानधर्मोपदेशं ददावेवं
श्रीनाभेयजिनेश्वरो धनभवे श्रेयःश्रियामाश्रयः
श्रेयांसः स च मूलदेवनृपतिः सा नन्दना चन्दना।
धन्योऽयं कृतपुण्यकः शुभमनाः श्रीशालिभद्रादयः
सर्वेप्युत्तमदानदानविधिना जाता जगद्विश्रुताः॥

इत्यादि व्याख्यानं श्रुत्वा विक्रमादित्यराजा जगौ–भगवन् मम गृहे स्वर्णपुरुषद्वयं विद्यते। ततो दिने बहु हेम लभ्यते। तेन मम पृथिवीमनृणीकर्तुमिच्छास्ति। गुरुभिः प्रोक्तं–न भाग्यं विना धर्मं कर्तुं मनोरथो भवति सम्पूर्णो भवति च...

श्रुत्वेति राजा ग्रामे पुरे स्वसेवकान् प्रेष्य मुखमार्गितं धनं दायं दायं पृथिवीमनृणीं चकार। ततस्तस्य संवत्सरो टिप्पणके शास्त्रेषु लिखितो बुधैः।

-शुभशीलकृत पंचशतीप्रबन्धसम्बन्धः, पृष्ठ260

इस विवरण से स्पष्ट है कि राजा विक्रमादित्य के सामने सिद्धसेन दिवाकर ने राजा मूलदेव के दान–पुण्य की प्रसिद्धि की प्रशंसा करके विक्रमादित्य को प्रेरित किया था। इससे स्पष्ट होता है कि यह राजा मूलदेव पूर्ववर्ती था। मूलदेव राजा था, यह उसके सिक्कों तथा सील से स्पष्ट है। वह सिद्धसेन दिवाकर के समकालीन विक्रमादित्य से पूर्ववर्ती था परन्तु उज्जैन के विक्रमादित्य का समकालीन था। अतः स्पष्ट ही सिद्ध होता है किसिद्धसेन दिवाकर का समकालीन विक्रमादित्य से पूर्ववर्ती था। परन्तु उज्जैन के विक्रमादित्य का समकालीन था। अतः स्पष्ट ही है कि सिद्धसेन दिवाकर मूलदेव के आश्रयदाता विक्रमादित्य के बाद के विक्रमादित्य का समकालीन था। अतः सिद्धसेन का समकालीन विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य हो सकता है।

विक्रमादित्य का समकालीन दत्तकाचार्य

श्रीमती निमिषा राजपुरोहित

साँची के ईसवीपूर्व द्वितीय–प्रथम शती के दानदाताओं में कुरर के दत्तक नामक भिक्षु (अभिलेख क्रमांक 619-620) के दो बार दान–उल्लेख हुए हैं । कुरर के अन्य भी कई दानदाता हैं । यह कुरर या कुरर घर अवन्ती जनपद आज मध्यप्रदेश विदिशा जिले के सिरोंज क्षेत्र का कुरावर ग्राम बताया जाता है। ईसवी पूर्व के सिक्कों पर दत्त नाम पाया जाता है।

कामसूत्र (1/1/11) के अनुसार पाटलिपुत्र की गणिकाओं के अनुरोध पर दत्तक ने वैशिक अधिकरण की रचना की। कामसूत्र की प्राचीन जयमंगला टीका के अनुसार एक माथुर ब्राह्मण पाटलिपुत्र में रहने लगा। बुढ़ापे में उसके पुत्र हुआ। उसके जन्मते ही उसकी माता मर गयी। पिता ने वह बच्चा वहाँ की अन्य ब्राह्मणी को दे दिया। थोड़े समय बाद पिता भी मर गया। ब्राह्मणी ने दत्तक पुत्र होने से वही नाम रख दिया और पाला पोसा तथा सब विद्या और कलाएँ पढ़ाईं। अपने ज्ञान का व्याख्यान करने के कारण वह दत्तकाचार्य कहलाया। एक बार उसके मन में आया कि उत्तम लोकयात्रा जाननी चाहिए और वह वेश्याओं में होती है। तब एक वेश्या से परिचय करके प्रतिदिन उसके पास जाकर लोकयात्रा को इतना जान लिया कि वह दत्तक ही उपदेश देने योग्य हो गया। तब, प्रमुख गणिका वीरसेना ने इससे कहा–पुरुषों को प्रसन्न करने का हमें उपदेश दीजिए। उसके इस आग्रह से दत्तक ने पृथक् शास्त्र रचा। दूसरी कथा के अनुसार गर्भ के समय त्रिनेत्र नामक अवधूत के शाप से वह स्त्री हुआ और फिर वरदान से पुरुष हुआ। अतः वह स्त्री पुरुष दोनों का स्वानुभव से ज्ञाता था। इसीलिए उसके विषय में कहा जाता है कि नियोग से वह दत्तक दोनों रसों का ज्ञाता था – नियोगादुभयरसज्ञो दत्तकः।

शूद्रक के पद्मप्राभृतक भाण (श्लोक 24), ईश्वरदत्त के धूर्तविटसंवाद (58/2) तथा श्यामिलक के पादताडितक (78/6) में दत्तकसूत्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पश्चिमी गंग राजा माधववर्मा द्वितीय के तीसरी सदी के पूर्वार्ध के एक लेख में भी दत्तक का उल्लेख पया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि चतुर्भाणी में दत्तक के कई बार उल्लेख हुए हैं परन्तु वात्स्यायन के कामसूत्र का उल्लेख नहीं पाया जाता है। कुट्टनी मत (77) में दत्तकाचार्य और वात्स्यायन का उल्लेख पाया जाता है -

वात्स्यायनमयमबुधं बाह्यान्दूरेण दत्तकाचार्यान्।
गणयति मन्मथतन्त्रे पशुतुल्यं राजपुत्रं च॥

राजा भोज की श्रृंगारमंजरीकथा में दत्तक द्वारा विरचित वैशिकरहस्यों का उल्लेख पाया जाता है। वहाँ राजा विक्रमादित्य के समकालीन उज्जयनी के वणिक् दत्तक के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं (पृष्ठ 86-88)।

इससे स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र में गणिका विशेषज्ञ दत्तक रहता था। वह ब्राह्मण था। राजा भोज के पूर्वोक्त सन्दर्भ के अनुसार अवन्ती के राजा विक्रमादित्य और मूलदेव का समकालीन था दत्तक। यह वणिक् था।

साँची के दानलेखों से ज्ञात होता है कि अवन्ती के कुररघर का भिक्षु दत्तक था। दानलेख ईसवी पूर्व दूसरी–पहली सदी के हैं । अतः विक्रमादित्य के समय दत्तक उज्जैन और अवन्ती क्षेत्र में रहता था, यह सिद्ध होताहै।

चतुर्भाणी से और कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों से स्पष्ट है कि मूलदेव आदि कई लोग पटना से आकर उज्जैन में बस गये थे। अतः दत्तक भी बाद में उज्जैन में आकर किसी कारण व्यवसाय करने लगा हो और विक्रमादित्य ने नाराज होकर जब उसका सब कुछ राजसात करने का दण्ड दिया (दत्तकं सर्वस्वमदण्डयत्। पृष्ठ 88) तो वह कुररघर में जाकर भिक्षु बन गया। कुररघर के बहुत से लोगों ने साँची में दान दिया तो उसने भी दे दिया। मृच्छकटिक नाटक से स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र से उज्जयिनी आकर जीवन से थके हारे लोग बौध्दभिक्षु बन जाते थे। दत्तक को भी विक्रमादित्य द्वारा दुराचार का दण्ड मिला था। अतः यह असम्भव नहीं है कि पटना का दत्तकसूत्र का कर्ता ही विक्रमादित्य का समकालीन और कुररघर का दत्तक हो।

यह उल्लेखनीय है कि चतुर्भाणी के अनुसार उज्जैन में मूलदेव–शश की उपस्थिति के समय दत्तकसूत्र ग्रन्थ प्रसिद्ध हो गया था – दत्तकसूत्रेष्विवोंकारः। दत्तक को ग्रन्थरचना की प्रेरणा देने वाली गणिका पाटलिपुत्र की वीरसेना थी। साँची में ईसवी पूर्व के दो दानलेख वीरसेना के भी हैं, परन्तु उसका स्थान परिचय नहीं दिया गया है। अतः दत्तक को ग्रन्थ रचना की प्रेरणा देने वाली पाटलिपुत्र की वीरसेना के ये साँचीलेख हैं या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि साँची के दानदाताओं में पाटलिपुत्र के लोग नहीं हैं। यह अलग बात है कि मूलदेव के समान गणिका वीरसेना भी पाटलिपुत्र से अवन्ती में आ गयी हो और उसने भी अन्य दानदाताओं के समान साँची स्तूपनिर्माण हेतु दान दिया हो।

सन्दर्भ –

1 साँची, भास्करनाथ मिश्र, पृष्ठ 194

2 एपिग्राफिया कर्नाटिका, भाग9, पृष्ठ 7

शुकसप्तति में विक्रमादित्य

डॉ. श्रीमती इला घोष

भारत राष्टके इतिहास में जो स्वनामधन्य व्यक्तित्व सहस्रों वर्षों के बाद भी "न ममार न जीर्यति' की महिमा से मण्डित हुये हैं, उनमें से एक हैं – महाराज विक्रमादित्य। वाङ्मयी सृळि के णिविध श पों – शाआि?र काळय में यह अभिधान आज भी अपनी सरपूर्ण रखरता आ?र आभा के साथ द?दी?यमान ह?। पुराणों, अनुश्रुतियों, इतिहास के पृ?ों, अभिलेखों, मु?ाओं, मूर्तिशिशप एवं चिखकला के रतिमानों के साथ ही महाकाळय, नाट्य, कथा, सुभाषित आदि काळय विधाओं में इनकी ळयारि, महान् सम्राट् विक्रमादिएय की विळवविश्रुत–कीर्ति एवं सर्वजनरिय लोकरअजक ळयि? एव को ज्ञापित करती ह?।

महाकाल की नगरी उअजयिनी को अधि? त करने वाले, अपरिमेय–अखएड काल को विक्रम संवत् के णारा मेय बनाने वाले, विदेशी आक्राधता के श प में भारतभूमि को पददलित करने वाले शकों को अपने अतुलविक्रम से पराति कर अपनी मातृभूमि को वितंख करने वाले, अति उदार, दानी, धयायरिय, गुणग्राही, रजारअजक राजा विक्रमादिएय की कीर्ति इतिहास के पृ?ों से निकलकर मनोरअजक लोक कथाओं के माणयम से दिग्–दिगधत तक ळयार हुई ह?।

गुणाढ्ळ की 'बृहएकथा' से लेकर 'रबंधकोश' तक संकृित कथासाहिएय की सुदीर्घ पररपरा में एक उशलेखनीय ग्रंथ ह? – चिधतामणि भअ की शुकसरति[1]। बारहवीं श. में रचित इस ग्रंथ की कथाएँ सर्वशािविशारद नीति निपुण शुक के णारा कही गई ह?। इनका उजेळय विामी के वाणिअय हेतु रवास पर चले जाने पर वि?रिणी ियिों णारा अभिरेरित की गई विामिनी रभावती को, पर–पुशष के लिये अभिगमन करने से रोकना ह?। शुक रति राखि अभिसरण के लिये सुसज्जित रभावती को रसङ्गानुकूल एक–एक कथा के माणयम से विरत करता ह?। सखार दिनों के पळचात् विामी के रवास से ला?टने पर रभावती णारा अपने अपराध की वीकृति, पळचाखााप तथा पति णारा क्षमा किये जाने के साथ कथा की समारि होती ह?। यणपि कथाकार ने इन कथाओं का उजेळय मनोरअजन बताया ह? –

वअिम चेतोविनोदार्थमुणदारं कीरसरमतेः।

तथापि ये कथाएँ नीति–पथ का निर्देश करते हुये सामाजिक मर्यादा, नारी धर्म एवं सदाचार की शिक्षा भी देती ह?।

शुकसरति की रएयेक कथा किसी न किसी देश, जनपद, नगर या ग्राम तथा वहाँ के अधिपति या किसी विशिळ ळयि? के उशलेख से रारम्भ होती ह?, यथा–

(I) पाटलीपुरपअ ने सार्वभा?मो नधदो नाम राजाभूत्।

(II) अिति धरापृ? रति?ानं नाम पखानम्। तख सखवशीलो राजा[2]।

(III) अिति चध?पुरी नगरी। तख सिणदसेनो नाम क्षपणको जनपूजितः[3]।

इन उशलेखों में सर्वाधिक महखवपूर्ण ह? – इतिहासपुशष – लोकनायक विक्रमादिएय।

'शुकसरति' कथा की आधार भूमि ह?– चध?पुर नगर जहाँ के राजा ह? – विक्रमसेन। उसी नगर में नीतिनिपुण शुक के विामी खिविक्रम नाम के णिज भी निवास करते ह?[4]। इस रकार शुकसरति का ताना–बाना 'विक्रम' आ?र 'खिविक्रम'

नाम के साथ ही गूँथा गया ह? । यहाँ उशलेखनीय यह ह? कि वेतालपअचविंशति के कथा नायक भी खिविक्रमसेन या विक्रमसेन ह?, जो पूर्व युग का विक्रमादिएय ही ह?।

शुकसरति की कथा तक कुल पाँच कथायें 5 से लेकर 9 तक विक्रमादिएय से संबंधित ह?–

अत्ति उअजयिनी नाम नगरी। तख विक्रमादिएयो राजा[5]।

कथा 7 में पुनः विक्रमादिएय का नामतः उशलेख हुआ ह?। कथा 8 में खिपुर के अधिपति 'खिविक्रम' का नाम आता ह?–

अत्ति पृखवीतले खिपुरं नाम थिानम्। तत्थिधिखविक्रमो नाम राजा[6]।

कथा6 एवं 9 में उधहें 'विक्रमार्क' कहा गया ह?। कथा संख्या 57 के नायक भी विक्रमादिएय ह? – किधतु उधहें 'विक्रमार्क' अभिधान से संबोधित किया गया ह? –

अवधतीपुया? विक्रमार्को नृपः[7]।

शुकसरति की उपर्यु? कथाओं एवं सधदर्भों के विळलेषण से विक्रमादिएय के समग्र ळय? एव को निम्न बिधदुओं में रेखाङ्कित किया जा सकता ह? –

1 विक्रमादिएय इस भुवनतल का एक विनामधधय अधवर्थ नाम ह?–

'विक्रमादिएय' अर्थात् आदिएय (सूर्य) सछ्श तेज, ऊर्जा, रताप आ?र विक्रम ह? जिनका ; ऐसे महान् राजा विक्रमादिएय। शुकसरति के अनुसार शखुओं को सधतर करने के कारण ही विक्रमादिएय यह अभिधान सार्थक हुआ ह?–

एवं पुनर्विक्रमादिएयो यथार्थोऽसि परधतप[8]।

ऐतिहासिक रमाणों के अनुसार विक्रमादिएय की ख्याति 'शकारि' के श प में ह?। शकों पर विजय के उपर्लीय में ईसा. पूर्व 57 में उधहोंने नवीन संवत् का रवर्तन किया ; जिसे राररभ में मालव संवत् तथा बाद में विक्रम संवत् के नाम से जाना गया। शखुओं पर विजय के उपर्लीय में अपने भृएयों को रभूत माखा में उपहार देने का उशलेख हाल की गाथासरशती (5/64) में भी हुआ ह?।

'विक्रम' आ?र आदिएय ये दोनों पद व?दिक वाङ्मय से आये ह?। 'विक्रम' एवं 'खिविक्रम' पद का रयोग विळणु के सधदर्भ में उनके पादक्षेपों के लिये हुआ ह?। ऋग्वेद के अनुसार विळणु देवता ने अपने विक्रम (तीन डगों) से समग्र लोकों को माप लिया था–

(।) इदं विळणुर्विचक्रमे खेधा निदधे पदम्[9]।

(।।) खीणि पदा विचक्रमे विळणुर्गोपा अदारयः अतो धर्माणि धारयन्[10]।।

अपने खिविक्रम से विळणु धर्म के धारक आ?र पृखवी के गोपा अर्थात् रक्षक हुए थे।

ऐतरेय ब्रा?ण के अनुसार – सरपूर्ण भूमएडल पर आधिपएय कर असुर उसे आपस में बाँटने लगे। तब विळणु को आगे कर इध? ने असुरों से भूमि माँगी। असुर विळणु के तीन पगों से नापी गई भूमि देवों को देने के लिये सहमत हो गये। विळणु ने अपने तीन पादक्षेपों से तीनों लोकों, वेदों आ?र वाणी को अधिगत किया –

इध?ळच विळणुळचासुर?र्ययुधाते... सोऽब्रवीदिध?ो यावदेवायं
विळणुर्विक्रम ते तावदमाकं युळमाकमितरद् इति।
स इमान् लोकान् विचक्रमेऽथो वेदान् अथो वाचम्[11]।

विळणुसहनिाम में 'विक्रम' आ?र 'क्रम' भगवान् विळणु के नाम कहे गये ह?[12]।

महाराज विक्रमादिएय ने भी भगवान् विक्रम अर्थात् विळणु के समान अपने क्रम से शकों को पराति कर मालव भूमि को

आर्यजनों के लिये रार किया था। वे आर्यधर्म के रक्षक आ?र पालक हुऐ थे। इस महान् घटना का रमाण पुरातात्विक सर्वेक्षणों से रार वे मु?ऐं ह?ं जिन पर ब्राह्मी लिपि में 'मालवानां जयः' अंकित ह?[13]।

वेदों में 'आदिएय' शरद सामाधय श प से देवमाता अदिति के पुखों या आदिएयगण के लिये रयु? ह?। मित्र, अर्यमा, इध?, वशण, दक्ष, अंश, भग आदि आदिएय ह?। इधहें शुचि, धारपूताः, अनवय, अरिळ, जगत् के धारक-

धारयधत आदिएयासो जगत्
विळवभुवन के गोपा–देवा विळवयि भुवनयि गोपाः।

अदरध, अनेक आँखों वाला, राजा आ?र ऋत से महान् कहा गया ह?[14]।

आदिएयों के ये सभी गुण महाराज विक्रमादिएय में विणमान ह?। शुकसरति के अनुसार दिळयश प आ?र गुणों के वामी विक्रमादिएय की सृळि–इध? से रभुएव, अग्नि से रताप, यम से क्रोध, कुबेर से विखा, श्रीराम से सखव एवं विळणु से थि?र्य आदि गुणों को लेकर हुई ह? –

इतरोऽपि न सामाधयो नृपनिर्दिळयश पभृत्।
इध?ाएरभुएवं अवलनाएरतापं क्रोधं यमाणेश्रवणाच्च विखाम्।
सखवंथिरे रामजनार्दनारयामादाय राज्ञः क्रियतः शरीरम्[15]॥

निश? में आदिएय पद का निर्वचन–

(।) 'आदखो रसान्' (।) आदखो भासं अयोतिषाम् (।।।) आदीरो भासेति वा तथा (IV) अदितेः पुख इति वा' के श प में किया गया ह?[16]– आदिएय पृथिवी से रस का ग्रहण करता ह?। राजा भी कर के माणयम से भाग लेता ह?। अयोतिळमानों से आभा रार करता ह?, या तेज से दीर होता ह?। आदिएयों को जधम देने वाली दिळय माता अदिति (अखएडनीय) ह?। शुकसरति के अनुसार ऐसे महापुशष एवं उनकी संतान विरल ही होती ह? –

तं भुवनखयतिलकं जननी जनयति सुतं विरलम्[17]।

अर्क, सूर्य या आदिएय का पर्याय ह?। अतः विक्रमादिएय को 'विक्रमार्क' भी कहा गया ह?। अयोतिर्विदाभरण के रचयिता कालिदास भी 'विक्रमार्क' इस अभिधान का रयोग करते हुए वियं को राजसखा कहते ह?ं –

श्री विक्रमार्कनृपसंसदि माधयबुणिद–
ति?र?यहं नृपसखा किल कालिदासः[18]।

विक्रमादिएय एक विनामधधय नाम ह?। शुकसरति के अनुसार उखाम पुशष अपने ही गुणों से ख्याति अर्जित करते ह?- उखामाः विगुण?ः ख्याता मणयमाळच पितुर्गुण?ः[19]।

महाराज विक्रमादिएय की ख्याति भी अपने ही पराक्रम एवं गुणों से ह?। पिता के नाम, रभुएव या गुणों से नहीं। संभवतः यही कारण ह? कि विभि? ग्रंथों में उनके पिता के नाम भि? ह?ं।

मेशतुङ्गाचार्य की पणावली में उधहें गर्दभिशल का पुख कहा गया ह? तो सोमदेव के कथासरिएसागर में महेध?ादिएय का पुख[20]। कथासरिएसागर के अनुसार शिव के गण 'माशयवान्' रलेअछों के संहार के लिये उज्जयिनी नरेश महेध?ादिएय के पुख श प में अवतरित हुए थे।

शुकसरतिकार ने भी अरएयक्ष श प से इसका संकेत दिया ह? –

नृपाख्यं हि अयोतिः रसभमिदम?ध?ं विजयते[21]।

इस पृखवीतल पर राजा नामक ऐध? तेज विजयी होता ह?। संभवतः विक्रमादिएय इध? या महेध? अभिधान वाले राजा के पुख थे। वे निळचय ही तेजवी, सुधदर भळय ळय?ि एव के वामी थे। अतः उधहें संबोधित एक पण में उधहें 'मदनावतार' कहा

गया ह? [22]।

(2) विक्रमादिएय मालवगण के शासक, अवधतीनाथ या उअजयिनी के अधिपति थे। शुकसरति की पाँचवीं कथा में उधहें उअजयिनी नामक नगरी का राजा तथा 57 वीं कथा में अवधतीपुरी का शासक कहा गया ह?। भारतीय इतिहास केअनुसार सिकधदर के आक्रमण के समय मालव जाति पअचनद रदेश में निवास करती थी। मालव–क्षु?कगण ने सिकधदर का विरोध किया था किधतु वे अपनी आपसी फूट के कारण पराति हुए थे। मा?र्य साम्राअय के अंतिम काल में पळिचमोखार भारत पर विदेशी आक्रमणों के कारण रथमशः ई.पूर्व में मालव जाति ने अवधित में गणराअय थिापित किया था। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में अवधितनाथ का वर्णन करते हुए उनके आदिएयवत् पराक्रम का संकेत किया ह?।

(3) विक्रमादिएय गुणग्राही, विणानों आ?र रतिभाओं का सरमान करने वाले उदार राजा थे। उनके राअय में शुभङ्कर नामक राजपएिडत निवास करता था। राजा की चध?लेखा नामक रानी का शुभङ्कर से अनुचित संबंध था। इस संबंध का ज्ञान होने पर राजा ने शुभङ्कर एवं राज्ञी को दएड देने की अपेक्षा अपनी रानी शुभंकर को रदान कर सदाशयता का परिचय दिया था क्योंकि वे विणद् रएनों का संग्रह करने वाले सम्राट् थे। शुकसरति के शरदों में –

'दुर्लभोऽयं बुधः। सुलभाः खलु नार्य इति विचिधएय महिषीं
हति धृएवा तमि? विदुषे ददा?। उवाच च गृहाणेमां महिषीम्। परितोषितः पएिडतोऽपि महारसाद' इएयवोचत्[23]।

(4) शुकसरति की अधय कथाओं से उनकी दुराग्रही रकृति या हठधर्मिता का भी ज्ञान होता ह? किधतु यह कथा के सधदर्भ में दुर्गुण होते हुये भी वितंख श प से विचार करने पर गुण ही बन जाती ह?। पाँचवीं कथा से लेकर नवीं कथा तक मएयिों के हायि का कारण जानने के लिये विक्रमादिएय के आग्रह का वर्णन हुआ ह?। अपने पुरोहित की पुखी बाल–पएिडता के णारा बार–बार समझाने के बाद भी वे अपने आग्रह से विरत नहीं होते ह?। यही रकृति उधहें शखुओं को पददलित करने एवं मातृभूमि को विाधीन कराने के महान् र्लीय को संभव बनाती ह?।

वेदों आ?र पुराणों के युग में; जिस रकार भगवान् विक्रम या खिविक्रिम विळणु ने अपने तीन पगों से तीनों लोकों को क्राधत किया था, उसी रकार विक्रमादिएय की कीर्ति भी सभी लोकों में ळयार ह?। वियं शुकसरतिकार के शरदों में [24]–

उग्रग्राहमुदधवतो जलमतिक्रामएयनालरबने
ळयोम्नि थिापि च दुर्गमक्षितिभृतां मूर्धानमारोहति।
ळयारं याति विषाकुल?रहिकुल?ः पातालमेकाकिनी
कीर्तिति मदनावतारकृतकं मधये भयं योषिताम्॥

हे कामावतार विक्रमादिएय, आपकी कीर्ति अकेले ही ग्राह आदि भयंकर जल जधतुओं से भरे हुए उदधि को पार कर आलरबन हीन ळयोम तक पहुँचती ह?। तएपळचात् दुर्गम पर्वत शिखरों पर आरोहण करती ह?। वहाँ से विषधरों से ळयार पाताल में भी पहुँच जाती ह?। अतः यह कथन सर्वथा असएय ह? कि ियिाँ भी या अबला होती ह?।

सिंहासनणाखिंशिका की कथाएँ जहाँ विक्रमादिएय की धयायरियता पर केधि?त ह?, वहीं वेतालपअचविंशति की उनके दुःसाहस, शा?र्यातिशय, बुणिदन?पुएय एवं रएयुएप?मतिएव पर तो शुकसरति की कथाएँ पुशष या ी के परकीय आकर्षण पर, जिनमें से कुछ का संबंध विक्रमादिएय के अधतः पुर से भी ह?। रळन यह ह? कि क्या उस युग का नारी समाज

उअछृंखल आ?र मर्यादाहीन था। कथाएँ 11वीं 12वीं श. में रची गइ? जिनका उजेळय कथा नायिका रभावती को कुपथ पर रवृखा होने से रोकना था। महाराज विक्रमादिएय के लोकरअजक उदार ळयí? एव ने ही शुकसरति की कथाओं को अवधती आ?र विक्रमादिएय से सरबज किया। कथा के अंत में रभावती णारा अपने अपराध की वीकृति, पळचाखााप एवं पति णारा पएनी को अङ्गीकार किये जाने से विक्रमादिएय की धयायरियता, सदाशयता तथा मानवीय–संवेदनशीलता की भी अभिळयí? होती ह?। ये कथाएँ सएय–असएय अथवा सर्वथा काशपनिक हो सकती ह? किधतु जन–मानस सएय–असएय करने की अपेक्षा सहज विळवास से ही आनधद रार करता आया ह?। जन–गण के मनोराअय पर अधि?त विक्रमादिएय की लोकरियता, विळवविश्रुति एवं कालजयिएव को रमाणित ये कथाएँ करती ह?। अतः विक्रमादिएय से संबणद इतिहास के ाित के श प में शुकसरति का भी अपना एक विशिळ थिान ह?।

सधदर्भ –

(1) शुकसरति पृ. 1 और – कथा–48, पृ. 103. (मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, 1959)
(2) वहीः– कथा–52, पृ. 111.
(3) वहीः– कथा–25, पृ. 65.
(4) वहीः– कथा–1, पृ. 01.
(5) वहीः– कथा–5, पृ. 13.
(6) वहीः– कथा–8, पृ. 25.
(7) वहीः– कथा–57, पृ. 120.
(8) वहीः– कथा–5, पृ. 17.
(9) ऋग्वेद– 1/22/17
(10) ऋग्वेद– 1/22/18
(11) ऐतरेय ब्रा?ण 6/3/15
(12) ईळवरो विक्रमी धधवी मेधावी विक्रमः क्रमः। महाभारत/अनुशासन पर्व/ 149/22
(13) इएिडयन रयूज़ियम ? ॉधस, जिशद-9, पृ. 162, कनिंघम–आर्कियोला?जिकल सर्वे रिपोर्ट, जिशद-6, पृ. 165-74
(14) ऋग्वेद- 2/2
(15) शुकसरति कथा 5, ळलोक 48,49
(16) निश? –2/4/13
(17) शुकसरति– 5/31
(18) अयोतिर्विदाभरण / शरदकशप?ुम से उद्धृत।
(19) शुकसरति– 7/66
(20) कथासरिएसागर/ 18/1
(21) शुकसरति – 9/79
(22) रघुवंश – 6/36
(23) शुकसरति – कथा 57, पृ. 123-124
(24) वहीः– कथा 57, पृ. 123.

लोकमानस में वीर विक्रमादित्य

डॉ. पूरन सहगल

लोक के सामने भले ही महाराजा विक्रमादिएय हो अथवा राजा भोज हो, भर्तृहरि हो या फिर हर्षवर्जन-इन विभूतियों के चरिख जन–जन के लिए रेरक बनते चले गए। वे लोक के दिय में थिापित हुए, फिर अंकुरित हुए आ?र फिर लहलहा उठे। दिय से कंठ पर आकर लोकळ्यापी हो गए। यह लोकळ्यापकता ही लोकसाहिएय की रामाणिकता ह?।

यही ''जो भी कहूँगा सच–सच कहूँगा'' का पुळीकरण भी ह? । लोकसाहिएय के प?र नहीं होते, पंख होते ह? । वह सात–समु? पार तक की याखा करके वापिस ला?ट आता ह? । जब वह ला?टता ह? तब बहुत कुछ वहाँ छोड़ जाता ह? । आ?र बहुत कुछ जोड़ भी लाता ह?।

विक्रमादिएय भले मालवा में हुए हों, किधतु म? तो अविभाजित भारत के उस किसि का जधमा जाया हूँ जो मुलतान से भी आगे का अंचल ह? । वहाँ भी वीर विक्रमादिएय का यश लोककंठ पर विराजित ह? । जब भी कोई संदर्भ विक्रमादिएय का आता ह?, तब लोक कह उठता ह?।

''वीर विक्रमाजीत, दुळमणादा दुशमण।
ते मितरां दा मीत।''
गल दी गल ते कमाल दा कमाल।
जितने विक्रमाजीत, उतने बेताल॥
तथा
विक्रमाजीत ने कर दिखाा धयाय,
कह दिखाा हाल।
उड़या बेताल, लटक्या फेर तो जंडी नाल॥
''विक्रमादिएय दुळमनों का दुळमन ह? आ?र मिखों का मिख ह?।''
''बात की बात आ?र कमाल का कमाल ह?। जितने विक्रमादिएय हुए उतने ही बेताल भी हुए।
यह एक कहावत ह?। ऐसी ही कहावत मालवी में भी ह?। ''जतरा ठाकर वतरा चाकर।''

तथा

''विक्रमादिएय ने उचित धयाय करके बेताल को जवाब दे दिया। विक्रमादिएय के बोलते ही बेताल उड़ गया फिर से जडी के वृक्ष पर लटक गया।''

बेतालपचीसी के ये संदर्भ अनेक भाषाओं की याखा करते हुए जब वर्तमान पाकिितान के उस फरंटीयर अंचल तक पहुँचे होंगे, तब उसने वहाँ की भाषा भी धारण कर ली आ?र तेवर भी। मेरे पिता को बेतालपचीसी की कई कथाएँ पंजाबी में कंठथि थीं। रएयेक कहानी के अंत में यह टि?पणी बखानी जाती थी। यही टि?पणी आगे जाकर किंवदंती बन गई। जब दो पक्षों में समझा?ते के रयएन सहमतियों के बाद अचानक असहमतियों में बदल जाएँ तब यह किंवदती कही जाती ह?।

एक राजा किस रकार किंवदंती पुशष बन जाता ह?, यह इसका एक रेरक रसंग ह?।

पंजाब में विक्रमादिएय, विक्रमाजीत हो गए। यही कारण ह?, कि 16 वीं शतारदी में हुए राजा हेमू ने विक्रमादिएय के बदले विक्रमाजीत की उपाधि धारण की। सिंध आ?र पंजाब में विक्रमाजीत की अनेक लोककथाएँ रचलित हं?। राजथिान, गुजरात, छखाीसगढ़, आंध्र, मालवा, सा?राळ आदि अनेक अंचलों में विक्रमादिएय की यशगाथाएँ बखानी जाती ह?ं। पंजाब में श्राज के अवसर पर अपने पूर्वजों के श्राज के साथ–साथ वीर विक्रमादिएय का भी श्राणद किया जाता रहा ह?। पहले गंगा, फिर गुश, फिर विक्रमाजीत आ?र फिर वरीयता के अनुसार पूर्वजों का श्राज होता ह?। इसी रकार निर्जला एकादशी पर सामूहिक श प से नदी या सरोवर के घाट पर पूर्वजों का तर्पण जब किया जाता ह?, तब वीर विक्रमादिएय का भी तर्पण किया जाता रहा ह?। विक्रम संवत् के आरंभ में पंचांग की पूजा की जाती ह?, तब वीर विक्रमादिएय की भी पूजा पुरोहित करवाता ह?। यह नि?। ळय? की महनीयता आ?र दिळयता की लोकश्रणदा ही तो ह?।

भले ही अनेक विक्रमादिएयों का उशलेख इतिहास करता हो किधतु उन उपाधिधारी विक्रमादिएयों का लोक में कोई विशेष थिान नहीं ह?। लोक तो केवल एक ही विक्रमादिएय को पहचानता ह? जो आज से 2069 वर्ष पूर्व हुआ था आ?र जिसने विक्रम संवत् चलाया।

जितने भी विक्रमादिएय उपाधि धारी राजा हुए वे सब रथम सदी ईवी पूर्व के पळचात् ही हुए। विक्रमादिएय की लोकरसिणिद की लालसा ही उधहें इस गा?रवमयी नामोपाधि को धारण करने के लिए सदा रेरित करती रही। बावजूद इसके जब भी हम ''विक्रमादिएय'' नाम सुनते या पढ़ते ह? तब हमारे मनमळितळक में आदि विक्रमादिएय की छवि ही उभर कर सामने आती ह?। जिस रकार गाने की पिरा?ड़ी सुनते समय हमारे मळितळक में मूल गाना ही गूंजता रहता ह? ठीक उसी रकार विक्रमादिएय शरद आते ही हमारे मळितळक में आदि विक्रमादिएय ही होते ह?। वह उपाधिधारी राजा या महाराजा नहीं। विक्रमादिएय भारतीय जनमानस की आथिा आ?र विळवास के रतीक बन गए। सन् 2004 में म? म?सूर के भारतीय भाषा संथिान में हिधदी आ?र सर्वभाषाओं के रोजेक्ट के लिये राळीय श?क्षिक अनुसंधान आ?र रशिक्षण परिषद् (NCERT) दिशली के निर्दे श पर हिधदी के विशेषज्ञ के श प में भेजा गया था। मेरे पास पंजाबी, बंगाली आ?र गुजराती भाषा का रोजेक्ट था। गुजराती के लिए दो छाख मेरे साथ सहयोगी थे। वीनू अतलानी आ?र भरत। वे कई बार एक वाक्य दोहराते थे। ''ओ विक्रमादिएय नो वचन छे।'' म? ने एक दिन उनसे पूछा तुम लोग सब यह वाक्य दोहरा कर क्या संदेश देना चाहते हो ? उधहोंने कहा जब कोई बात कहकर उसका भरोसा दिलवाना होता ह? तब हम कहते ह? - ''ओ विक्रमादिएय नो वचन छे।'' यह विक्रमादिएय का वचन ह?। अर्थात् यह वचनभंग कभी भी नहीं होगा। चाहे जो हो जाये। यह ह? लोक-आथिा आ?र लोक विळवास की जीवंतता। इसीलिए म?ने कहा ह? लोक जब किसी को वीकारता ह? तब सएकारता भी ह?। वह उसे अपनी जीवनचर्या का आ?र सांकृितिक पररपरा का आदर्श बना लेता ह?।

भारत पर बाहरी आक्रांताओं को जिस–जिस भी युग नायक ने अपने पराक्रम आ?र सूझ बूझ से खदेड़ कर बाहर किया उनमें शकारि महाराज विक्रमादिएय का नाम सर्वोपरि ह?। युगपुशष राम ने भारत को रावणीय आतंकियों से मु? किया। वे नाम से उपाधि बन गये। फिर विशिळ से सामाधय होते गये। आगे चलकर वे लोकळया?त हो गये। वे फिर उपाधि से नाम बन गये। कृळण चध? ने पहले जरासंघ को पछाड़ा आ?र फिर उसके निमंखण पर भारत आये आक्रांता कालयवन को मारा। कृळण भी नाम से उपाधि बने आ?र फिर उपाधि से नाम बन गये। विक्रमादिएय भी पहले उपाधि बने। फिर उपाधि से नाम बन गये। इसी को लोकळयापीकरण कहते ह?। नाम से नाम की यह यश याखा इतनी सहज नहीं होती। हूणारि यशोधर्मा ने भी दशपुर जनपद से

हूणों को खदेड़ बाहर किया किधतु के उपाधि नहीं बन सके। इसका कारण था यशोधर्मा का लोकमाधय नहीं हो पाना। यशोधर्मा राजा बने रहे वे लोक के दायरे में नहीं आये। वर्तमान युग में महाएमा गांधी का उदाहरण बहुत पिळ ह?, वे उपाधि बन गये। लोक से जुड़कर एकमेव हो जाना ही मनुळय को महनीयता रदान कर सकता ह?। ऊँची कूद से पहले थोड़ा झुकना पड़ता ह?। बड़ा होने के लिये छोटा होना पड़ता ह?। भगवान् विळणु का वामन श प इसी बात का उदाहरण ह?। महाराजा भोज ने अपने काल में भारत पर हुए रथम तुर्क आक्रमण को निळफल किया। वे उपाधि नहीं बन सके। उनके आदर्श विक्रमादिएय थे। भोज विक्रमादिएय की समकक्षता तो रार कर गये। उनसे आगे नहीं बढ़ सके। वे लोकपुशष बन गये। दिळयपुशष नहीं बने। विक्रमादिएय के बाद भी भारत पर कई आक्रमण हुये। अपने समय के राजाओं ने उधहें खदेड़ने आ?र उनके आक्रमणों को निळफल करने में अपने बल आ?र पराक्रम का खूब रयोग किया। वे सफल भी हुये। सबने अपना यश विक्रमादिएय उपाधि में निहित कर लिया।

यह सिलसिला भारत पर हुए बाद के कई आक्रमणों के समय के बाद तक भी चला किधतु बाद में ऐसा कोई एक छख सम्राट् नहीं हुआ जो विदेशी आक्रांताओं को भारत में अपनी सखाा थिापित करने से रोक पाता। अंग्रेजी सखाा को उखाड़ने के लिए 1857 की क्रांति का योगदान बहुत महखवपूर्ण माना जाना चाहिए। बाद में सेनानियों की शहादत आ?र महाएमा गांधी के सएयाग्रहों के रयोग का परिणाम अंग्रेजी सखाा को उखाड़ने में महएवपूर्ण माना जाना चाहिए। विदेशी आक्रांताओं को खदेड़ने में विक्रमादिएय का नाम सर्वोपरि माना जाता ह?।

लोकनायक विक्रमादिएय ने इतिहास को ज?सा छकाया ह? वह अजुत आ?र अनुपम ह?। लोक ने पूरे सरमान के साथ अपने वीर नायक को अपना आदर्श मान लिया। वीर विक्रमादिएय ने वचन छढ़ता आ?र धयाय नि?ा की ऐसी यश पताका फ हराई कि उससे कई पीढ़ियाँ यशवी हो गइ? । उसी पररपरा में राजा भोज ने फिर एक बार वीर विक्रमादिएय की याद ताजा कर दी। विक्रमादिएय आ?र राजा भोज के मणय का समय शूधयकाल ज?सा हो चुका था। भोज ने उस शूधयता को तोड़ा।

वीर विक्रमादिएय पर अनेक ग्रंथों की रचना की गयी। इनमें बुधविामी रचित बृहएकथाळलोकसंग्रह, क्षेमेध? की बृहएकथामंजरी, सोमदेव का कथासरिएसागर सबसे अधिक चर्चित हुई आ?र इधहीं ग्रथों में से बेतालपच्चीसी तो जन जन के कंठ पर भारत आ?र भारत के बाहर तक वितिारित हो गई। इधहीं ग्रंथों में से संग्रहीत बेतालपच्चीसी को जितनी रसिद्धि मिली उतनी ही रसिद्धि शुकसरति या किसिा तोता म?ना को भी मिली। सिंहासनबखाीसी भले ही विक्रमादिएय की दिळयता को लोक थिापित करने वाली कथाएँ ह? किंतु इन कथाओं के वातिविक रेरक लोकपुशष राजा भोज हं?। जहाँ तोता म?ना की कहानियाँ, विक्रमादिएय की लोकख्याति को रमाणित करती ह? आ?र उधहें लोक में सहजता रदान करती ह? वहीं बेतालपच्चीसी आ?र सिंहासनबखाीसी उधहें दिळय बना देती ह?। सिंहासनबखाीसी तो राजा भोज के लिये लिखी गई, ऐसा पिळ रतीत होता ह?। इसलिए ज?न कवि मालदेव ने अपने ग्रंथ भोज चरिखराहा में कहा भी ह? -

''सिंहासन बखाीसी की कथा सरस अवदात।
राजा भोज न होत तऊ, को तमु जानत वात॥''

सिंहासनबखाीसी में तो विक्रमादिएय को वीर, साहसी, देवरिय, शि? मान, धयायरिय, सएयवादी, रजापालक एवं वचन धारक के श प में बखाना गया ह?। अनेक सिद्धियाँ उनके वश में थीं। भूत–पिशाच, डाकिनियाँ उनके वश में थीं आ?र

उनके संकेत माख से रकट हो जाती थीं। वे अपने पराक्रम से इध? तक को भयभीत करने की क्षमता रखते थे। ऐसी अनेक कथाएँ, गाथाएँ आ?र गीत लोक में रचलित हं?। ऐसा ही एक लोक संदर्भ ?ळ ळय ह?।

''छ?पन को साल, चारी खूँट अकाल।
परजा वई बेहाल। मचगी खाही–खाही
रगसा करो हे इधदर देवता, रगसा करो महाकाल।

महाकाल को ळयो आदेस। जागो राजेश।
इधदर ने ललकारो, मालवा ने काल ती उबारो।
विक्रमादिएय ने ताणी कमाण।
कमान पे चढ़ायो तीर। धधय–धधय विक्रमवीर।
विक्रमादिएय ने छोड्या बाण।
एक दाण नी हजार दाण।
वादशया में करि दिया सुराख।
खूब वरयिो पाणी, खूब, पाकी साख।
इधदर राजा परगट्ला,
पवन देव परगट्ला,
विक्रमादिएय की करि ज? ज?कार।
वरसी गया फूलड़ा। मिटि गयो कार॥''

कहा नहीं जा सकता कि यह लोकसंदर्भ वितंख गीत ह? अथवा सचमुच किसी नाट्ल कथा का अंश भाग। जो भी हो, यह लोकसंदर्भ विक्रमादिएय की रजा चिधता के साथ साथ उनके दिळय पराक्रमी चरिख को भी रकट करता ह?। ऐसी ही दिळयता बेतालपच्चीसी आ?र उससे भी अधिक सिंहासबखाीसी में रकट होती ह?। यदि हम मालवा के दो महान् राजा वीर विक्रमादिएय आ?र राजा भोज में तुलना करें तब म? निःसंकोच कहूँगा कि विक्रमादिएय लोक में दिळयपुशष के श प में थिापित ह? तो भोज राजा लोक पुशष के श प में ख्यात ह?।

झाबुआ अंचल से एक लोककथा मिली ह?। इतिहास अथवा संकृित ग्रंथ विक्रमादिएय के पिता अथवा माता तथा भाइयों के विषय में कुछ भी कहते हों लोक अपने ढंग से सोचता आ?र बखानता ह?। कथा कहती ह? –

''भीलों का राजा था गंधर्व! वह भिशल गोख का था। चारी खूंट उसका राज था। बड़े–बड़े राजा उसके अधीन थे। उसने चार विवाह किये। एक छखाणी। जिससे वीर विक्रमादिएय प?दा हुआ। भरथरी विक्रमादिएय का मां जाया भाई था। रखेल खवासण से बेताल प?दा हुआ। तीसरी रानी बनियानी थी। उससे शंकु प?दा हुआ। चा?थी रानी शू?ा थी उससे भाटडा प?दा हुआ। वही बाद में भअ कहलाया। एक भिशल रानी से धधवंतरी नामधारी बेटा प?दा हुआ। दूसरी रानी ब्रा?णी थी, जिससे वरशचि प?दा हुआ। खवासण राणी नहीं थी, रखेल थी। तीन रानियाँ आ?र भी थीं। उनकी संतानों का यश नहीं फ? ला। विक्रमादिएय के प?दा होते ही उसके मुँह पर सूरज का भलकारा था। उस दिन दितवार भी था। इस कारण उसका नाम ''दितवाशया'' रखा गया। दितवाशया बहुत वीर था। उसने खूब तपयिा तपी। खूब सिणिदयाँ वश में करीं। उसके पिता भीलों में

छखी थे। छखाणी मां आ?र छखी बाप का बेटा दितवार्या असल छखी था। भरथरी भी भाई दितवारया के मुकाबले का था। दोनों भाइयों में खूब रेम था। भरथरी बड़ा था, वह राजा बना। बाद में उसकी रानी ने उसके साथ धोखा किया। उसे व?राग हो गया। उसने वेश ले लिया। खूब तपयिा तपी ओर कुल का जस धधय किया। भरथरी के बाद दितवार्या राजा हुआ। वह बहुत वीर था। राजा बनने के बाद उसका नाम विक्रमादिएय हुआ।

विक्रमादिएय राजाओं का राजा था। देवता उसके मिख थे। उसका सिहांसन इध? की बराबरी में लगता था। बखीस पुतलियों का सोने आ?र रएनों से जड़ा सिंहासन उसे इध? देवता ने दिया था। महाकाल के वह साक्षात् दर्शन करता था। कालका ने उसको अपनी तलवार दी थी। वह धयाय आ?र सएय का देवता था। दुळमन उसके नाम से कांपते थे। विदेशियों को उसने मार भगाया। उसकी माँ चरपणी थी। चरपावर्ण उसका श प था। उसका बाप बलवान था। विक्रमादिएय में दोनों के गुण थे।''

ऐसी लोकधारणा के धारक वीर विक्रमादिएय को लोक में इसीलिए दिळय माना गया ह?। वह लोक पूअय हो गया। लगभग इ?ीस सा? वर्षों के बाद भी उस दिळय पुशष की यशकीर्ति कम नहीं पड़ी। वीर विक्रमादिएय सचमुच राजाओं का राजा था। वह परम पराक्रमी, शकारि था। धयाय का रामाणिक आदर्श लोकमानव का दिळय पुशष आज भी भारतीय संकृिति का रेरक पुशष ह?। वीर विक्रमादिएय लोक में दिळय रार कर किंवदती पुशष के श प में सदा–सदा जीवित आ?र जीवंत बना रहेगा।

यदि म? विक्रमादिएय को दिळय पुशष कहता हूँ तो इसका आधार यह लोककथा भी ह? जो विक्रमादिएय की दिळयता को रमाणित करती ह? -

''धरती पर धर्म की माधयता घटने लगी। पाप का रचार बढ़ने लगा। सएय, शील, दया आ?र दान लोगों के आचरण से बिदा हो गये। रजा खाहि–खाहि कर रही थी। धरती पर पाप का भार बढ़ गया। धरती ने भगवान महाकाल के दरबार में पुकार लगायी। महाकाल ने धरती को आळवति किया। राजा महेध?ादिएय उअज?नी का राजा था। उसने महाकाल की तपयिा की। महाकाल ने उसे मनवांअिछत वर मांगने के लिये कहा। महेध?ादिएय ने कहा भगवन्! यह धरती आपकी कृपा चाहती ह?। महापापों से इसका तन–मन ळयाकुल ह?। आप मुझे ऐसा पुख रदान करें जो धरती को पाप–ताप से मु? कर सके। भगवान महाकाल ने राजा विक्रमादिएय को वरदान दिया। तुरहें मेरे अंशश प से एक तेजवी पुख की रारि होगी। वहीं धरती को समति पापों से मु? करेगा। भगवान् के आशीर्वाद से महेध?ादिएय को पुख की रारि हुई। वही पुख शिवविश प विक्रमादिएय कहलाया।'' महेध?ादिएय के कई नाम थे। वही गंधर्वसेन भी था। उअज?न के राजा की भीलों पर विशेष कृपा थी। उसकी एक रानी भिशल गोख की थी। इसलिए कुछ लोग विशेषकर भील समुदाय विक्रम को अपना पूर्वज मानता ह?।'' यही कथा बृहएकथा आ?र कथासरिएसागर में भी किंचित् पाठभेद के साथ कही गई ह?। इस कथा का मूल उजम जो भी हो, इसका आशय पिळ ह? कि विक्रमादिएय एक अवतारी पुशष थे। शिव विश प एवं शिव अंश थे -

यदायदा हि धर्मयि ग्लानिर्भवति भारत।
अरयुएथानमधर्मयि, तदाएमानं सृजारय हम्॥
परिखाणाय साधूनां विनाशाय च दुळकृताम्।

धर्मसंथिापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

के अनुसार उधहोंने धरती पर अवतार लिया। अपनी विरद का निर्वाह किया आ?र धरती पर सएय, शील, दया, दान, धयाय आ?र निर्भयता की थिापना कर अपना अवतारकाल समार होते ही शिवलोक गमन कर गये।

ऐसे अनेक रसंग ह? जो विक्रमादिएय को लोकमानस में दिळयता रदान करते ह?। उनकी दिळयता राम, कृळण ज?से अवतारी युगपुशषों ज?सी ही सार्वकालिक एवं चिरंजीवी ह?। लोक ने आ?र रचनाकारों ने अपने बखानों में भी विक्रमादिएय को दिळयपुशष के श प में ही रकट किया ह?। वे सचमुच दिळय पुशष ही थे।

संदर्भ –

1. आदि विक्रमादित्य – डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

सुलभ नाम की दुर्लभ यश पताका

–डॉ. पूरन सहगल

''वारत राजा विक्रमजीत दी'' के सृजक वस्ती राम हैं । ये दरियाखान तह, बक्खर जिला मियांवाली के रहने वाले थे। वस्तीरामजी जरगर अर्थात् सुनार थे। मेरे परिवार के कहीं से ये रिश्तेदार होते थे। मेरे परिवार में सदा कुलगुरुओं का ठिकाना बना रहता था। हमारी गुरु पेढ़ी झंग की थी। झंग सूफियों का केन्द्र भी था। हीर–रांझा यहीं हुए थे। वस्तीरामजी किस्सागोई में बहुत मशहूर थे। वे हमारे गुरुभाई थे। मेरे पिता शुरू से ही संत स्वभाव के थे और सदा गुरुओं की सेवा में लगे रहते थे। खेती उनके पास खूब थी। सिंध दरिया हमारे गाँव के पश्चिम में बहता था। उस से खूब आबपाशी होती थी। घर में लंगर बनता था। तंदूर की रोटी और मक्खन-छाछ यही भोजन खास होता था। मैंने अपनी माँ को तंदूर पर ढेर सारी रोटियाँ बनाते देखा था।

वस्तीरामजी हमारे घर गुरुओं के ठिकाने पर रुकते थे और रात भर किस्से सुनाते थे। गाते बहुत मीठा थे। पंजाबी दोहरे तो ऐसे मीठे सु नाते थे कि समा बंध जाता। दोहरे सूफियाना दर्शन के होते हैं। श्रृंगार वाले टप्पे भी वे खूब सुनाते थे। मेरे पिता ने सुन–सुन कर बहुत सी कहानियाँ और वारत दोहरे टप्पे याद कर लिए थे , जो उन्हें विभाजन के बाद मनासा में आ बसने के बाद भी याद रहे। यह वारत उन्हीं की स्मृति का प्रसाद है। कुछ किस्से कहानियाँ भी उनसे सुनी थीं। वे 102 वर्ष की लम्बी उम्र जिए और मरने के एक मिनिट पहले तक खूब बातें मुझसे करते रहे। अंत में अचानक राम–राम कहकर मौन हो गए। फिर न वे बाले न जागे।

रूपचंदजी जरगर मेरे बड़े ब हनोई (जीजा) थे। वे भी अच्छे गायक थे। यह वारत उन्होंने भी वस्तीराम से सुनी थी। मैंने इसे उनसे सुनकर अपनी कापी की वारत को प्रमाणित किया। जब वस्तीरामजी पंजग्राही (मेरा गाँव) में रहकर गीत, किस्से वगैरा सुनाते थे, तब मेरी उम्र ग्यारह वर्ष की थी। उनकी सेवा मेरे जिम्मे रहती थी। लहंदी (पंजाबी की उपबोली)की यह वरत एक दुर्लभ रचना है। हो सकता है यह अभी भी पंजाब के किसी भाग में सुनी–सुनाई जाती हो। वैसे संभावना बहुत कम है। वहाँ अब न तो वस्तीराम जरगर है और न वह परम्परा। हो सकता है विभाजन के बाद आकर हिन्दोस्तान के किसी हिस्से में कोई मियांवाली क्षेत्र का व्यक्ति बसा हो और उसे यह वारत याद हो। बशर्ते उसकी उम्र अस्सी वर्ष से ऊपर हो।

इस वारत में एक नाम आ?र आता ह? आलम शाह मशहूरी (या मंसूरी)। उसने वेताल पच्चीसी के किसि लहंदी में लिखे। खूब सुनाए। उस क्षेत्र में हिधदुओं के अनेक किसि कहानियाँ मुसलमान शायरों ने लिखे। म? जिस रामलीला का निर्देशक रहा आ?र जो रामलीला (''रेम रचारिणी राम मंडली'') पाकितिान से हमारे साथ जुड़ी रही वह रामलीला भारत में भी कई वर्षों तक चलती रही। रामानंद सागर की रामायण के दूरदर्शन पर रसारण के बाद तक पिचहखार साल तक चलने वाली उस रामलीला का रदर्शन बंद हो गया। उस रामलीला का लेखक मोहरमद हुस?न था। नाटक श?ली की वह रामलीला लहंदी आ?र उर्दू के ठाठ में खूब चली।

आज हमें लहंदे पंजाब का वह हिसिा पराया लगता ह?। एक समय वह हमारा ही हिसिा था। इस कारण किसि कहानियाँ वारत अखाण आदि का आदान रदान होता रहा। म?ने लिखा भी ह?। लोकसाहिएय के प?र नहीं पंख होते ह?।। वह सात

समु? की याखा कर जब वापिस ला?टता ह?, तब बहुत कुछ छोड़ आता ह? आ?र बहुत कुछ जोड़ भी लाता ह?। पाठभेद व भाषाभेद लोक साहिएय के गुण ह? । यह कंठानुकंठ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत की तरह रार होकर स?कड़ों वर्षों तक जीवित बना रहता ह?, इसीलिए इसमें बदलांव विाभाविक होता ह?।

म?ने इस वारत का अनुवाद किया ह?। हिधदी आ?र लहंदी मेरी मां–मा?सी ह?। इसलिए अनुवाद की रामाणिकता पर विळवास किया जा सकता ह?।

॥वारत राजा विक्रमादित्य की॥

(लिखी और सुनाई वस्तीराम जरगर
गाँव दरियाखान, तहसील बक्खर, जिला–मियांवाली, पश्चिमी पाकिस्तान
संकलन एवं हिन्दी अनुवाद– डॉ.पूरन सहगल)

उज्जैन में विक्रमाजीत नाम का राजा हुआ। जिसने विक्रमी संवत् चलाया। मैं उसी के गीत गाता हूँ । उज्जैनी धन्य है। शिप्रा धन्य है। वहाँ गंगा घाट जैसा तीर्थ है। वहाँ का असली राजा महाकाल है और सभी उनके भाट हैं।

कहते हैं वहाँ इन्द्रपुरी जैसी रौनक थी। अन्न और धन का ठाठ था। कवि सुंदर कवित्त करते हैं। भाट लोग विरदा गाते हैं।

ये भाट लोग विक्रमादित्य की ख्याति कह कर पूरा विवरण बखानते हैं । मैंने ऐसा बड़े बुजुर्गों से सुना कि विक्रम राजा बड़ा दातार था। जहाँ तक चाँद, सितारे और सूर्य की चमक है। जिनका यश बड़े–ब ड़े विद्वान् लिख–लिख और सुना–सुना कर थक गए हैं। फिर भी यश बखान पूरा नहीं हो सका।

ऐसा सुनने में आया है कि, राजा विक्रम तो सूरज जैसा था और उनके दरबार में नौ ग्रह रहते थे। जो बहुत विद्वान् थे। उन विद्वानों की कोई बराबरी नहीं कर सकता था। वे बहुत ज्ञानी थे,

जितने भी संसार में इल्म (विद्याएँ) हैं। उन सब विद्याओं का ज्ञान विक्रमादित्य को था। वे तो पक्षियों और पशुओं की बोली भी समझते थे।

देश में बहुत जंग बहादुर (युध्दप्रवीण) दुश्मन घुस आए थे। वीर विक्रमादित्य ने उन सब को मारकाट कर देश से बाहर खदेड़ दिया। उसी महान जीत के उपलक्ष्य में उनका खूब सम्मान किया गया। उन्होंने दुश्मनों पर जीत हासिल की इसीलिए वे विक्रमाजीत कहलाए। उनकी ख्याति सूर्य के समान प्रकाशित हो गई। समस्त शत्रु उनके मित्र हो गए। सभी उनके अधीन हो गए।

कुछ लोग बताते हैं। बाहरी दुश्मनों के कारण विक्रम ने विक्रमी संवत् चलाया। कुछ लोग कहते हैं। पहले से चलने वाले संवत् में विक्रमादित्य ने जीत के बाद उसे अपना संवत् घोषित किया।

कोई कुछ भी कहता रहे। हमें तो यह बात कोरी गप्प लगती है। विक्रमादित्य ने ही यह संवत् चलाया। यही पक्की बात है।

एक सिंहासन था। वह सिंहासन इन्द्रासन जैसा भव्य सुन्दर और रत्न मणियों से जड़ा हुआ था। उस पर बत्तीस पुतलियाँ स्थित थीं। उसके चारों पाँव बहुत मजबूत थे। (यहाँ चारों पाँव से अर्थ धर्म के चार पाँव- सत्य शील, शुचिता और 'दया–दान' से किया गया प्रतीत होता है। ''चारहि चरण धरम जग माहीं'')

बत्तीस पुतलियाँ ऐसी थीं मानो न्याय की पहरेदार हों। वे पुतलियाँ सत्य–असत्य की तत्काल पहचान कर लेती थीं। सदा सचेत रहती थीं।

राजा विक्रमादित्य उस सिंहासन पर बैठ कर सच्चा न्याय करता था। सारी बातें खुलकर सामनेआ जाती थीं। कुछ भी छुप नहीं सकता था।

विक्रमादित्य सच्चा–सच्चा न्याय करता था। इस बात के कई किस्से इधर सब तरफ मंदिर और मस्जिदों तक में बखाने जाते हैं।

दान और पुण्य की तो बात ही मत पूछो। उसका तो वर्णन करना ही कठिन है। विक्रमादित्य दोनों हाथों से दान बाँटता था। वह जितना बाँटता था उतना ही बढ़ जाता था। विक्रमादित्य के हाथ में करण जैसी रेखा मंडी हुई थी। वह सूर्यपुत्र करण ही था।

वीर विक्रमादित्य के किस्से दसों दिशाओं में सुनाये जाते थे। उसके गीत गाये जाते थे। सब अपनी–अपनी मति, जानकारी और मान्यताओं के आधार पर अलग–अलग कथाएँ सुनाते हैं। कहा जाता है वीर विक्रमादित्य दुश्मनों का दुश्मन और मित्रों का मित्र था। गाँव–गाँव में उनकी खूब चर्चा होती है। सब कहते हैं विक्रमादित्य धन्य था, महान् था।

शत्रु उसके नाम से काँपने लगते थे। थर–थर थराने लगते थे और हथियार डाल कर भाग खड़े होते थे। चोर–चकार तो विक्रमादित्य के राज्य में किसी भी हालत में नहीं बस सकते थे। घरों में ताले नहीं लगाए जाते थे।

स्त्रियों की खूब इज्जत की जाती थी। जो भी कपट व्यवहार करता था वह बेमौत मारा जाता था। अर्थात् दंड बहुत कठोर थे। किसी भी तरह की लूट–खसोट नहीं होती थी। कोई भी रिश्वत नहीं लेता था। अर्थात् सभी प्रशासक, शासक, कर्मचारी ईमानदार थे। भ्रष्टाचरण नहीं होता था।

सिहांसन पर स्थित बत्तीस पुतलियाँ सच–झूठ बतला देती थीं। विक्रम को वे न्याय और धर्मसम्मत सूचनाएँ देती रहती थीं।

बेताल भूत का भी एक किस्सा खूब सुना जाता है। आलमशाह जो बहुत मशहूर लिखार शायर था। उसने बेताल भूत के पच्चीस किस्से लिखे हैं। वह उन्हें गाता (सुनाता) भी है। (मशहूर, आलम शाह का उपनाम भी हो सकता है। या फिर ''मंसूरी'' जो मुसलमान पिंजारों का सम्बोधन है। यह मंसूरी से मशहूरी हो गया हो। मंसूरियों की गोत्रें आज भी चौहान, भाटी आदि कही व पहचानी जाती हैं।

ईश्वर करे मेरी किस्मत जाग जाए और मैं वहाँ जा सकूँ जहाँ खास सत्यवादी विक्रमादित्य राजा ने राज किया था। वहाँ जाकर में शिव शंभू (महाकाल) के दर्शन करूँ। राजा भरथरी के भजन गाऊँ/ छिपरा(शिरा) नदी में निान कशँ । डुबकी लगा कर समति पापों से मु? पा सकूँ।

भ? पूरन आ?र गोपीचधद के लरबी तान लेकर पद गा सकूँ। गोरखनाथ, मछधदर के पद गा सकूँ तथा भगवान् कृळण का नाम मिरण कर सकूँ। (पंजाब में इन सब संतों–नाथों को खूब गाया जाता रहा ह?।)

वतीराम की यह म?त ह? कि, कभी भगवान करे उअज?न के तीर्थ पर जाऊँ। जहाँ कृळण सुदामा पढ़े थे। वहाँ जाकर मएथा टेकूँ।

हरसिणिद माता के चरणों में मएथा टेकूँ, कालिका माता के दर्शन कशँ । जिस धरती पर विक्रमादिएय ने राज किया था वहाँ फेरा पाऊँ, अर्थात् वहाँ पहुँचूँ।

ईळवर की इअछा तो ईळवर ही जाने। वह अपनी इअछा से ही सब करेगा। वतीराम कहता ह? यदि भाग्य में होगा तब मेरे मन की मुराद अवळय पूरी होगी।

करणहार से सदा डर कर ही रहना ठीक ह?। वह करने आ?र कर गुजरने में घड़ी–पल का भी विलरब नहीं करता। वह चाहे तो पल में नदियों में उफ़ान ले आए आ?र वह चाहे तो पल में नदियों को सुखा कर जमीन में बदल दे। सब उसकी मरजी से

चलता ह?।

न विक्रमादिएय रहा, न राजा भोज रहा। न महल अटारियाँ रहीं। यह संसार तो चला–चली का मेला ह?। कोई आज जाएगा आ?र कोई कल जाएगा।

सब चले गए। केवल उनकी कथाएँ आ?र चर्चाएँ रह गइ?। कई वर्ष बीत गए। ऐसा लगता ह? ज?से कुछ पल बीते हों। मानो ये सब कल की बातें ह?। कितने ही राजा आ?र उनके राज बीत गए। अअछे, बुरे, भले सब बीत गए।

जिधहोंने लोगों की समयिाएँ सुलझाई ह?, धयाय किए ह?, उनके नाम अमर हो गए ह?। दो नाम तो कभी भी नहीं भुलाए जा सकेंगे। एक विक्रमादिएय का दूसरा सच्चे राजा भोज का। इनके नाम सात समु? पार तक वितिारित ह?ं। वतीराम ने यह वारत लिखकर अपना फर्ज निभाया ह?। यह वतीराम गाँव गाँव जा कर सुधदर सुधदर किसि सुनाता ह?। आपने भी सुने होंगे। (सा?जधय मूलपाठ में देखें।)

॥ वारत राजा विक्रमाजीत दी ॥

लिक्खी ते सुणाई वस्तीराम जरगर पिंड–दरियाखान, तहसील बक्खर, जिला मियांवाली, प. पाकिस्तान

राजा होया उज्जैन विच, नाम विक्रमाजीत।
संवत चलाया विक्रमी, उसदे गावां गीत॥ 1॥
धन्न उज्जैनी, धन्न छीपरा, तीरथ गँगाघाट।
महाकाल राजा उथे, होर सुण्या हे भाट॥ 2॥
इन्द्ररपुरी जेहिं रौनक कहंदे, अन्न धन्न दा ठाठ।
कवि कवित्त करदे सुंदर, विरदा करदे भाट॥3॥
शोहरत विक्रमाजीत दी, कहंदे तार नितार।
बड़े–बड़े बुजुरगां तूँ सुण्या, विक्रम सी दातार॥4॥
जे तक धरती, चांद सितारे, सूरज दा चमकार।
लिख–लिख थक्के, कह–कह थक्के, सारे इलमदार॥5॥
हिक सूरज नौ ग्रह सुणीदे, रहंदे विच दरबार।
नहीं मुकाबला कोई उन्हांदा, बड्डे इलमदार॥6॥
जितने इलम जगत ते हों दे, ओ सब विक्रम जाणे।
पखु जनावरां तक दी बोली, विक्रमराजा जाणे॥7॥
मुल्क विच वड़ आए दुशमण, सारे जंग बहादर।
मार काट के बाहर कीते, खूब कराया आदर॥8॥
दुशमण जित्ते, इस्से खातर, नाम विक्रमाजीत।
सूरज वरगी शोहरत होई, दुशमण होए मीत॥9॥
कोई कहंदे, जित्त दे खातर, विक्रम संवत् चलाया।
कोई कहंदे पहले संवत दे विच, संवत् नवां रलाया॥10॥
कोई कुझ वी कहंदा रहवे, सानूं लगदियाँ झल्ल।
विक्मजीत चलाया संवत्, ए हे पक्की गल्ल॥11॥
हिक सिंघासन इन्दर वरगा, रत्तनमणिया दार।

बत्ती पुतलियाँ उसते जड़ियाँ, पाए पक्के चार॥12॥
बत्ती पुतलियाँ इवें जाणो, न्याय दिया पहरेदार।
सच्च–झूठ नूँ फौरन परखण, रहंदियाँ सी होशियार॥13॥
राजा विक्रम बैठ सिंघासन, करदा सच्चा न्याय।
खुल्ली–खुल्ली गल्ला होदियाँ–होंदा नहीं छुपाव॥14॥
सच्चा–सच्चा न्याय करेंदा, राजा विक्रमाजीत।
इसे गल दे किस्से चलदे, मंदरां विच मसीत॥15॥
दान पुन्न दी गल न पुच्छो, दोनइ हथां वंडदा।
जितना वंडदा उतना वधदा, करण वांग हथ मंडदा॥16॥
विक्रमजीत दे दसां दिसां, गांदे किस्से गीत।
कथा सुणांदे वक्खो–वक्खी, अपणी अपणी नीत॥17॥
वीर विक्रमाजीत, दुशमणा दा दुशमण ते मितरां दा मीत।
पिंड–पिंड विच गल्लां चल्लण, धन्न विक्रमाजीत॥18॥
दुशमण कम्बदे, थर–थर करदे, सट हथियारां भजदे।
चोर चकार न वसदे हरगिज़ , घरां न जंदरे लगदे॥19॥
इज़्ज़त जनांनियां दी बहुँ होंदी, कपटी बेमौतां मरदे।
लुट्ट न होंदी किसे तरहां दी, ना कोई रिश्वत भरदे॥20॥
सिंघासन दियां बत्ती पुतलियां, झूठ–सच कह दें दी।
विक्रमजीत नूं, न्याय–धरम दी सच्ची खबरां रंहदी॥21॥
हिक किस्सा बेताल भूत दा, खूब सुणाया जांदां हे।
पंजी किस्से आलमशाह मशहूरी लिख्या गांदा है॥22॥
रब्ब करे ते किसमत जागे, जा पहुँचा उस पासे।
जित्थे राजा विक्रम ने सी राज कर्या सत खासे॥23॥
शिव शम्भू दे दरसन पावां, राजा भरथरी गावां।
छिपरा दे जल डुबकी लाके सारे पाप मिटावां॥24॥
पूरन भगत ते गोपीचंद दी लम्बी तान सुणावां।
गोरख नाथ मच्छंद गावां, पढ़ा किशन दा नावां॥25॥
वसती राम दी इहा मन्नत, उज्जैन दे तीरथ जावां॥
जित्थे पढ़या किशन सुदामा, उत्थे सीस नमावां॥26॥
मत्था टेकां हरसिध्दिनूँ, काली दे दरसन पावां।
राजे विक्रम राज कर्या, उस धरती ते फेरा पावां॥27॥
रब दी मरजी रब ही जाणे, ओ अपणी मरजी करसी।
वसती राम जे किसमत होसी, तां मुराद मन भरसी॥28॥
करणहार तो डरदे रहिए, करद्यां, घड़ी न लावे पल।
पल विच नदियाँ नीर केरंदा, पल विच नदियाँ करदा थल॥29॥
विक्रम रह्या न भोजराज, ना मेड़ी ना शीश महल।
चला चली दा मेला वस्ती, अजगिया कोई जासी कल॥30॥
रह गए किस्से, गल, कहाणियाँ, साल गुजर गए जीवें पल।

कितनेइ राजे, राज गुजर गए, चंगे, माड़े भलो भल ।।31।।
ना नहीं मिटदा कदां उन्हांदा, जिन्हा मसले कीते हल।
दो नां कदां न मिट सकन गे, राजा विक्रम, भोज सचल ।।32।।
सात समंदर पार तईं नाम, इन्हां दा खिंडिया।
वसती राम ए वारत लिख के फरज निभाया जिंडिया ।।33।।
पिंड–पिंड विच जांदा वस्ती किस्से कहंदा सोहणे।
तुस्सा वी ता कदां–कदां ए किस्से सुणे होणे ।।34।।

सौजन्य (1) संत जेठानंद, मनासा (मूल–पंचग्राही, जिला मियांवाली)
(2) श्री रूपचन्द, भरतपुर (मूल–भरमी, जिला मियांवली)

जटवारे की लोककथाओं में विक्रमादित्य

नरेशकुमार पाठक

उत्तरी मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले की ग्वालियर तहसील एवं भिण्ड जिले की गोहद तहसील के कुछ गांव जटवारे क्षेत्र में आते है, इस भाग पर गोहद के जाट शासकों का अधिकार रहा था। आज भी अधिकाश गांव जाट राजपूत बाहुल्य है, इस लिये इसे जटवारे के नाम से पुकारते हैं। इस क्षेत्र की सीमा बुन्देलखण्ड के भिण्ड जिले की लहार तहसील, रतिया जिला की रतिया एवं भाण्डेर तहसील एवं ब्रज प्रदेश के भिण्ड मुरैना जिला है। गोहद का मतलब गौ–हद अर्थात् यहां भगवान् कृष्ण गाय चराने आते थे, इनका आखरी पड़ाव या हद थी, गोरम में गायें रुकती थीं, कुतवार कर्ण की जन्म भूमि थी एवं भगवान् कृष्ण की लीला स्थली रही। वर्षा ऋतु में गांव में कई पारम्परिक कार्यक्रम होते थे, जैसे गांव के बाहर भोजन बनाकर खाना, देवी की आरती का आयोजन करना। मेरा जन्म स्थान ग्राम उटीला, जटवारे का भाग है, यहाँ पर बारह गाँव सनाढ्य ब्राह्मण बाहुल्य है, गांव से 5 कि.मी. दूरी पर भदावना तीर्थ है, जिसे स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार सभी तीर्थों का भानजा कहा जाता है। इस तीर्थ का निर्माण रतिया नरेश ब्रशगदेव (वीरसिंहदेव) द्वारा करवाया था। भदावना के पुजारी गुर्री ग्राम निवासी पण्डा परिवार है, जो इस क्षेत्र में अषाढ मास में गांव–गांव में देवी की आरती कराते थे। यह आरती दिन ढलते माता मंदिर में की जाती थी। आरती के बाद गांव के लोग वियारू (रात्रि भोजन) के बाद बगला पर एकत्रित होते थे, मेरे परिवार के तीन बगला थे, जिसमें सबसे पुराने बगले में जाजम (फर्स) जमीन पर बिछा दिया जाता था, एक तरफ पुरुष दूसरी तरफ महिलाओं का समूह होता था। मध्य में भगवान् को थाली में बिठा दिया जाता था, कथा सुनने आने वाली महिला एवं पुरुष पण्डाजी को भेट हेतु अनाज अन्य सामग्री लाते थे, जिसे एक स्थान पर एकत्रित कर लिया जाता था, सभी के एकत्रित हो जाते थे, तब नरवर के राजा नल, परमार राजा उदयादित्य, भोज एवं उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य की मौखिक लोककथाएँ सुनाते थे। परमार की जगह पंवार और महाराजा विक्रमादित्य को राजा वीरु विकरमाजीत के नाम से सम्बोधित किया जाता था, ये लोककथा बुन्देली एवं ब्रज बोली में मिश्रित कही जाती हैं, इसलिये इन दोनों बोली के मिलन बिन्दु बोली को डॉ. हरिहरनिवास द्विवेदी ने ग्वालियरी बोली माना है।

कथा का प्रवक्ता आरती करने वाला पण्डा होता था, जिसे परम्परागत कथाएँ स्मरण थीं, गांव का एक व्यक्ति हूंका देता था, शेष सभी मौन रहकर सुनते थे। श्रीशान्तिचन्द्र द्विवेदी के अनुसार इस तरह कथाओं में हूंका एक अपरिहार्य साधन है। 'हूंका' देने का तरीका बड़ा सुन्दर होता था। प्रवक्ता के विराम स्थलों पर जो वाक्य पूरा होने तक अनेक बार आते हैं। 'हूँ' 'और का', ऐसे ई है-आदि उत्तर देना तो साधारण है, किन्तु कथाकार का 'सहो भरने' के लिये' चल दए है 'पोहोच गए है' 'धन्न है', 'पटक रए है' -सद्य उत्तर घटना वर्णन के अनुसार चतुर हूका देने वाला देता था।

इस क्षेत्र की लोककथाओं में राजा विकरमाजीत की कहानियों को बड़ा आदर प्राप्त है, ये मंगलकारी मानी जाती है। इस प्रकार की कथाओं का उल्लेख शान्तिचन्द्र द्विवेदी द्वारा किया गया है, इनका अधिकांश जीवन जटवारे से लगे मुरार में और घासमण्डी में निवास करते हैं। कथाओं का विवरण इस प्रकार है :–

राजा वीर विक्रमाजीत पर दुःख के काटन हार थे, चौदा विद्या के ज्ञाता थे, उनके जैसों राजा पृथ्वी में होबो मुसकिल है, शेर और बकरिया उनके राज में एक घाट पै पानी पियत हते, विक्रम की कथा पण्डा बडे रोचक ढंग से सुनाते हैं। यह पावन एवं शुभकारी मानी जाती है, लोककथाओं में वर्णित राजा वीर विक्ररमाजीत कौन सा है, यह कहना कठिन है, किन्तु जितनी भी जानकारी है उसके अनुसार यह राजा विक्रमाजीत उज्जैन नगरी का स्वामी ही है।

राजा वीर विकरमाजीत अपनी प्रजा का सुख, दुख, जानने के लिये राजा को बहुधा उज्जैन नगरी में वेश बदल कर घूमते दिखाई देंगे। किसी का दुख मालूम हुआ कि उसको मिटाने के लिये उनकी आत्मा अत्यन्त विकल हो जाती थी, उसका दुःख मिटाने के लिए बड़ा से बड़ा खतरा भी वे मोल ले लेते हैं, वन में आग लगती है, एक साँप विह्वल होकर शीतल होने के लिए राजा से अपने को मुख में रख लेने की प्रार्थना करता है। विक्रम रख लेते हैं। यद्यपि पीछे से सांप उनके पेट में घुस कर उनको जलंधर रोग से पीड़ित कर देता है। चोर उनके महल में चोरी करते हैं, तो वो स्वयं उसकी शोध करते हैं और चोरों को दण्ड आजीविका के रूप में मिलता है। कोई दो औरतों की कथा सुनकर विक्रम वहीं दौड़े जाते हैं और अपनी संगीत निपुणता के कारण उनमें राजा को इन्द्रसभा से ले आते हैं। कोई नवयुवक परदेश गया। बहुत दिनों से उसके न लौटने के कारण उसके कुटुम्बी व्याकुल हैं, तो राजा वीर विकरमाजीत उसे ढूंढने जाते हैं और क्योंकि राजा की नौकरी से छुट्टी नहीं मिलती है, अतः वे स्वयं उसकी जगह नौकरी करते हैं और उसे घर भेजते हैं।

दुष्काल से पीडित राजहंसों का एक जोड़ा विक्रम के पास आता है। खजाने के मोती उनके सत्कार में समाप्त होने को आते है। राजा को शंका होती है कि वे राजहंस के जोड़े को मोती न चुगा सकेंगे और इस प्रकार उनको कष्ट होगा। जब मैं कुछ पक्षियों के एक जोड़े का भी पोषण नहीं कर सकता तब ऐसे राजपाट का क्या अर्थ ? ऐसा चिधतन करते हुये विक्रम रानी सहित आएमग्लानि से राजपाट छोडकर मुफलिसी के जीवन के लिये निकल जाते ह? आ?र एक लुहार के यहँ मजदूरी पर रहते ह?। भयंकर आएमग्लानि आ?र पक्षियों के उस जोड़े की चिधता तीव्रता की इस माखा तक पहुँचती ह? कि भगवान् उनको दर्शन देते ह? आ?र वरदान मांगने को कहते ह?। राजा वीर विकरमाजीत को न तो इस समय व?भव की लालसा ही जाग्रत होती ह? आ?र न मु? की भावना ह?। वे तो उन पक्षियों के लिये भोजन ही मांगते ह? जो उनको उनके बगीचे में सदा बहार सदा फले फ ूले मोतियों के वृक्षों के रूप में मिलता है। उज्जैन नगरी में दो दिन पहले ही विवाह होकर आई एक स्त्री का पति मर जाता है, विक्रम वहाँ पहुँचते हैं। वह कहती है ''राजा वीर विकरमाजीत, तेरे राज में में विधवा भई। तै तो पराए दुख को काटन हार है, मेरो दुख न हर सक है ? विक्रम लाश को न जलाने की हिदायद देकर रवाना होते हैं, अपनी जान पर खेलकर अमृत पैंती (वह अंगूठी जिससे अमृत टपकता है) देवी से वरदान में लाते हैं। उससे उस युवक को जिन्दा करते हैं। सन्तला जोगी एक सेठ की बहू को ले भागता है। वह बड़ा भारी जादूगर है। अतः उस सेठ के सातों पुत्रों को घोड़ों सहित उसने पत्थर के बना दिये, जो उस बहू को लेने गये थे। सेठ–सेठानी और उनकी छहों पुत्रवधुओं का परिवार इधर अत्यन्त विकल हो गया था। विक्रम को रात्रि के गश्त में इसका समाचार मिला उस बहू और सेठ से। उन पुत्रों की मुक्ति के लिये राजा चल पड़े। मार्ग में शिवजी भी उनको सन्तला जोगी के जादू का भय बताते हैं। किन्तु विक्रम को अपने प्राणों का मोह नहीं है। वे दुनिया भर के खतरे उठाकर उनका उध्दार करते हैं।

देशाटन के सिलसिले में एक नगर में विक्रम पहुँचते हैं, जहां एक बुढ़िया रो रही है। आज रात को राजकुमारी के पहरे पर उसके एकलोते पुत्र की बारी है, जहाँ का पहरेदार प्रतिदिन सबेरे मरा हुआ मिलता है। विक्रम द्रवित होकर बुढिया को सान्त्वना

देते हैं और स्वयं उस लड़के की जगह पहरे पर जाते हैं, जहाँ रात्रि में पहरेदारों की मृत्यु का कारण राजकुमारी के मुख में से निकली हुई नागिन को मारते हैं और इस प्रकार उस कुमारी और आधे राज्य के अधिकारी होते हैं।

ज़ादू के चक्कर में पड़कर राजा विक्रम तोते के शरीर में रहकर जीवन यापन कर रहे थे, उनका प्रतिद्वन्दी उनके शरीर में रहकर सारे तोते मरवा रहा था। विक्रम पेड़ के पास से निकले जिस पर निन्यानवे तोते बहेलिया के जाल में फँसे हुए थे। उनके दुःख को देखकर विक्रम कातर हो गये और स्वयं भी उन तोतों के साथ जाल में जा फंसे। यद्यपि वे युक्ति से सबको छुड़ाने के लिए फँसे थे किधतु द?वयोग से उनकी यु? से आ?र सब तोते तो उड़ गये। वे वियं बहेलिया के हाथ पकड़े गये आ?र मा?त के खतरे का सामना करना पड़ा।

विक्रमादिएय से संबंधित अनेक लोक कथाएँ ह?ं। मेरे णारा इस आलेख में उधहीं कथाओं का उशलेख लिया ह?, जो जटवारे के गाँवों में कही जाती थीं। विक्रमादिएय रचलित लोककथाओं का एक वितधख एवं विशाल विषय ह? जिनका संकलन करने की आवळयकता ह?, क्योंकि ये कथाएँ लुर सी होती जा रही ह?ं।

आन्ध्र में विकीर्ण 'विक्रमार्क' सौरभ

डॉ. जगदीश शर्मा

संवत् प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य ने अपनी कीर्ति पताका न केवल उत्तर भारत में, बल्कि दक्षिण भारत में भी फहराई। इसीलिए वे सम्पूर्ण भारत के राष्टीय नायक हैं। दक्षिण भारत में, विशेषकर आन्ध्र में विक्रमादित्य की प्रसिध्दि विक्रमादित्य के नाम से न होकर विक्रमार्क के नाम से है। उत्तर भारत में तो भट्टिकाव्य के कवि भट्टि के अतिरिक्त और अन्य कोई भट्टि ख्यात नहीं हैं, किन्तु आन्ध्र में भट्टि राजा विक्रमार्क के भ्राता ही नहीं , बल्कि मंत्री के रूप में प्रसिद्ध हैं।

आन्ध्र में प्रचलित दन्तकथाओं के अनुसार किसी समय उज्जयिनी में विद्यासागर नामक एक ब्राह्मण युवक रहता था जो अत्यन्त प्रतिभाशाली था। उसने चारों वर्णों की कन्याओं से विवाह किया। कालान्तर में विद्यासागर को ब्राह्मण पत्नी से वररुचि,राजपुत्री से विक्रमार्क, वैश्य पत्नी से भट्टि तथा अन्तिम वेश्या पत्नी से भर्तृहरि–ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। वररुचि व्याकरण शास्त्र का महान् पण्डित बना, भट्टि ने सम्राट् विक्रमार्क का महामन्त्री पद सुशोभित किया। भर्तृहरि विक्रमार्क का सेनापति बना, किन्तु पत्नी के देहावसान के पश्चात् विरागी हो पदत्याग दिया और सुभाषितों का प्रणयन किया। सिंहासनाधिरूढ़ विक्रमार्क ने भट्टि की मन्त्रणा पर महाकाली की आराधना कर दो सहस्र वर्षों तक शासन करने का वरदान प्राप्त किया। दो सहस्र वर्षों तक भट्टि के सहयोग से शासन करने के पश्चात् युध्द में वह सातवाहन के हाथों पराजित हो जाता है। कथा क्रम के मध्य में स्वर्ग अप्सरा रम्भा और उर्वशी के मध्य श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर उठा विवाद, निर्णय करने में अक्षम देवेन्द्र के द्वारा विक्रमार्क को स्वर्ग में आने का निमन्त्रण, विक्रमार्क का चतुरतापूर्ण निर्णय, इन्द्र द्वारा विक्रमार्क का भव्य सम्मान एवं सत्कार, विक्रमार्क को महाकाली का वरदान, बेताल की कथाएँ शातवाहन का जन्म तथा उसके साथ युध्द में विक्रमार्क के पराजय की कथा अनुस्यूत है। विक्रमार्क की कथा की प्रसिद्धि और रोचकता को दृष्टिगत कर तेलुगु में उस राजा पर केन्द्रित भट्टि विक्रमार्क और विक्रमार्क विजयमु–ये दो फिल्में भी बनी हैं।

न केवल दन्तकथाएँ बल्कि तेलुगु साहित्य भी विक्रमार्क कथा से समृध्द हुआ है। तेलुगु साहित्य के इतिहास में 1380 ई. से 1500 ई. लगभग तक का युग श्रीनाथ युग माना जाता है। श्रीनाथ के समकालीन महाकवि जक्कना ने नवरससंवलित वस्तु को लेकर 'विक्रमार्कचरित्रमु' नामक आठ आश्वासों में निबध्द तेलुगु प्रबन्ध काव्य की रचना की है। तेलुगु भाषा में महाकाव्य को प्रबन्ध काव्य कहा जाता है। संस्कृत में उपलब्ध विक्रमादित्यचरित के अंशों को, बृहत्कथा तथा कथा–सरित्सागर की कतिपय कथाओं को तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित विक्रमादित्य की कथाओं को कवि ने अपनी रचना का आधार बनाया। महाकवि जक्कना के संस्कृत तथा तेलुगु–दोनों भाषाओं पर अप्रतिम अधिकार, गहन शास्त्र पाण्डित्य, रुचिकर कथन शैली, वर्णन सौन्दर्य, रसपरिपाक तथा सुन्दर सूक्तियों के प्रयोगादि विशेषताओं के कारण विक्रमार्कचरित्रमु ने तेलुगु साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान अर्जित किया है। विक्रमार्क के साहस, पराक्रम, औदार्य, दानशीलता तथा न्यायप्रियता आदि अद्भुत गुणों के वर्णन से समृध्द इस महाकाव्य का मुख्य रस भी अद्भुत ही है।

दन्त कथाओं एवम् महाकाव्य में ही नहीं, विक्रमार्क का यश आन्ध्र में उनके द्वारा निर्मित मन्दिर में भी अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आन्ध्रप्रदेश में पवित्र गोदावरी नदी के निकट स्थित आलमूरु नामक ग्राम में विक्रमार्क तथा उनके मन्त्री भट्टि के द्वारा स्थापित विक्रमार्केश्वर स्वामी मंदिर तथा भट्टीश्वर स्वामी मन्दिर आज भी उनकी कीर्ति पताका फहराते हुए विद्यमान हैं । यहाँ के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो विदित होता है कि माता काली के आराधक विक्रमार्क ने उज्जयिनी से लेकर आलमूरु पर्यन्त भूमार्ग पर शासन किया था। शासन के सिलसिले में मन्त्री भट्टि के साथ राजा विक्रमार्क प्रायः यहाँ आया करते थे, ऐसा यहाँ का इतिहास बतलाता है। विक्रमार्क के शासन काल में यहाँ पर कई युध्द हुए। आलं का अर्थ है युध्द और उरु का अर्थ है पुर। अर्थात् जिस पुर में युध्द होते रहते हैं वह है आलमूरु। यहीं पर राजा शातवाहन और विक्रमार्क के मध्य तुमुल युध्द हुआ था, इसलिए यह स्थान आलमूरु अर्थात् युध्द ग्राम के रूप में प्रसिध्द हो गया।

गोदावरी तट स्थित राजमहेन्द्री से तीस किलोमीटर दूर पर स्थित आलमूरु में भट्टि तथा विक्रमार्क की आराध्या श्री भुवनेश्वरी देवी का मन्दिर अवस्थित था। इस देवी की आराधना के निमित्त वे दोनों प्रायः इस ग्राम में स्थित मन्दिर में आया करते थे। इस भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर के भग्नावशिष्ट हो जाने पर अब पार्श्व में स्थित तडाग ही उस वैभवपूर्ण युग का स्मरण दिलाता है। इस तडाग का जब उत्खनन हुआ तो उसमें से भुवनेश्वरी देवी की प्रतिमा और अन्य प्रतिमायें प्राप्त हुई। संरक्षण की सुविधा नहीं होने से कुछ समय तक उनको स्थानीय जनार्दन स्वामी के मन्दिर में रखा गया। तत्पश्चात् आगमविदों की सलाह पर अब उन्हें स्थानीय बंगारु पापा मंदिर में सुरक्षित रखा गया है।

शातवाहन के द्वारा युध्द की घोषणा के समय माँ काली से वरदान प्राप्त विक्रमार्क अपनी कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के लिए मन्त्री भट्टि की सलाह पर उन दोनों अर्थात् विक्रमार्क और भट्टि के नाम पर दो शिवलिंगों की स्थापना की है, यह इतिहास विदित है। भुवनेश्वरी देवी की आराधना के निमित समागत भट्टि और विक्रमार्क ने अभिषेक करने के प्रयोजन से भट्टीश्वर और विक्रमार्केश्वर आलयों का निर्माण करवाया है, ऐस भी कहा जाता है। ये मन्दिर समग्रतः बाँबी की मिट्टी से निर्मित हैं। सम्प्रति प्रतिवर्ष माघ बहुल दशमी को आलमूरु में श्रीविक्रमार्क भट्टीश्वर कल्याण महोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। दो महान् सम्राट् शातवाहन और विक्रमार्क के मध्य सम्पन्न तुमुल युध्द की साक्षी रही आलमूरु की इस भूमि का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

आन्ध्र की दन्तकथाओं में, महाकाव्य में तथा अपने द्वारा शासित ग्राम के मन्दिरों में आज भी विक्रमार्क अथवा विक्रमादित्य की कीर्ति अजर और अमर रूप में अक्षुण्ण है, जो भारत के वैभवशाली इतिहास के एक स्वर्णिम अध्याय का स्मरण दिलाती है।

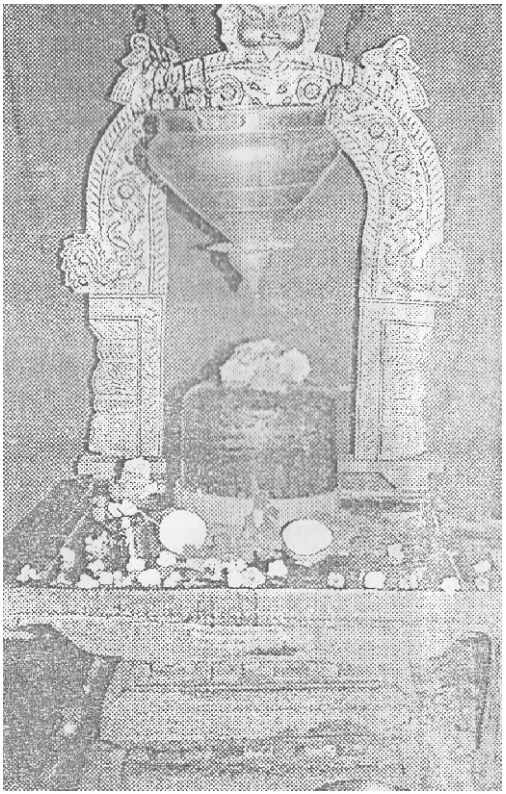

आलमूरु में अवस्थित
विक्रमार्केश्वर स्वामी

आलमूरु में अवस्थित
भट्टीश्वर स्वामी

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित रहे सन् - संवतों की सूची

संकलन – डॉ. श्यामसुन्दर निगम

1. **प्राकृतिक संवत्**
   - सृष्टि संवत्
   - कलियुग संवत्
   - लौकिक संवत्
2. **व्यक्तिपरक एवं घटनापरक**
   - कालयवन संवत्
   - कृष्ण संवत्
   - युधिष्ठिर संवत्
   - बुध्द निर्वाण संवत्
   - महावीर निर्वाण संवत्
3. **चरित्र–प्रधान एवं इतिहासपरक**

(अ) भारतीय-	(ब) विदेशी-
मौर्य संवत्	सेल्यूसीडियन संवत्
विक्रम संवत्	पार्थियन संवत्
द्वितीय शक संवत्	प्रथम शक संवत्
कलचुरि-चेदि संवत्	ईस्वी संवत्
गुप्त संवत्	बहाई संवत्
हर्ष संवत्	हिजरी संवत्
अमली संवत्	
विलायती संवत्	
फसली संवत्	
बंगाली सन्	
मालवी संवत्	
भट्टिका संवत्	
मागी संवत्	
गंगा संवत्	
बर्मी कोमन संवत्	
भौमाकर संवत्	
कोल्लम संवत्	
नेवार (नेपाल) संवत्	
शिवसिंह संवत्	
शाहूर सन्	
पुड़वैप्पु संवत्	
तारीख इलाही संवत्	
जुलुसी संवत्	
राज शक संवत्	
विविध संवत्	
महर्षि दयानंद संवत्	
अन्य लगभग दस छोटे-मोटे संवत्	

तालिका नं. 1
भारतीय इतिहास में प्रचलित संवत्
धर्म चरित्रों से सम्बन्धित संवत्

क्र.	संवत् का नाम	आरंभिक वर्ष	वर्तमान प्रचलित वर्ष (ईसाई (ईसाई संवत् में) संवत् के वर्ष 1992–93 के बराबर है तथा भारतीय संवत् के वर्ष 45–46 के बराबर है)	संबंधित संप्रदाय का नाम
1.	सृष्टि संवत्		1972949077 (आर्य समाज के धर्मग्रंथों पर उल्लिखित)	हिन्दू वैदिक धर्म
2.	कालयवन संवत्			
3.	कृष्ण संवत्	3236 ई.पू.	5229 (शुध्द भारतीय पंचांग) 5247	हिन्दू वैदिक धर्म
4.	युधिष्ठिर संवत्	2448 ई. पू.	4441 (अनु.) 4459	हिन्दू वैदिक धर्म
5.	कलियुग संवत्	3101 ई.पू.	5094 (शुध्द भारतीय पंचांग) 5112	हिन्दू वैदिक धर्म
6.	लौकिक संवत्	24-25 ई.पू.	2717 (अनु.) 2735	
7.	बुध्द निर्वाण संवत्	487 ई.पू.	2537 (राष्टीय पंचांग) 2555	बौध्द सम्प्रदाय
8.	महावीर निर्वाण सं.	527 ई.पू.	2520 (राष्टीय पंचांग) 2538	जैन सम्प्रदाय
9.	ईसाई संवत्	0 ई.	1993 (राष्टीय पंचाग)	ईसाई सम्प्रदाय (दूसरे सम्प्रदायों द्वारा दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त)
10.	हिजरी संवत्	622 ई.	1414 (राष्टीय पंचांग) 1389	इस्लाम सम्प्रदाय
11.	महर्षि दयानंदाब्द	1825 ई.	169 (अनु.) 186	हिन्दू आर्य समाज सम्प्रदाय
12.	बहाई संवत्	1844 ई.	150 (बहाई पंचांग) 167	बहाई सम्प्रदाय

तालिका नं. 2
भारतीय इतिहास में प्रचलित संवत्
ऐतिहासकि घटनाओं से आरंभ होने वाले संवत्

क्र.	संवत् का नाम	आरंभकर्ता का नाम	आरंभिक वर्ष (ईसाई सं.में)	वर्तमान प्रचलित वर्ष 2011	प्रचलन क्षेत्र
1.	मौर्य संवत्		320 ई.पू.	2313 (अनु.) 2331	
2.	सैल्यूसीडियन सं.	विदेशी	312 ई.पू.	2305 (अनु.) 2323	काबुल व पंजाब
3.	पार्थियन संवत्	विदेशी	247 ई.पू.	2240 (अनु.) 2258	
4.	विक्रम संवत्	विक्रमादित्य	57 ई.पू.	2050 (राष्टीय पंचांग) 2069	
5.	शक संवत्	कनिष्क (?)	78 ई.पू.	1915 (राष्टीय पंचांग) 1933	
6.	कल्चुरी चेदी सं.		248-49 ई.	1745 (अनु.) 1762	
7.	गुप्त संवत्	चन्द्रगुप्त प्रथम	319-20 ई.	1674 (अनु.) 1619	सौराष्ट, बंगाल उत्तरी भारत
8.	अमली संवत्	इन्द्रद्युम्न	592-93 ई.	1401 (रिपोअ 1449	उड़ीसा
9.	मालवी संवत्		598 ई.	कलैण्डर रिफोर्म कमेटी	
10.	विलायती संवत्		592 ई.	1401 (अनु.) 1419	बंगालव उड़ीसा
11.	फसली संवत्		592 ई.	1401 (अनु.) 19919	उत्तर भारत, मद्रास
12.	बंगाली संवत्		593 ई. (अनु.)	1400 (राष्टीय पंचांग) 1414	बंगाल
13.	श्रीहर्ष संवत्	श्रीहर्ष	607 ई.	1386 (अनु.)	मथुरा व कन्नौज
14.	भट्टिका संवत्		623 ई.	1370 (अनु.) 1388	राजपुताना
15.	मागी संवत्		638 ई.	1355 (अनु.) 1373	बंगाल (चिटगांग जिला)
16.	गंगा संवत्		570 ई.	1355 (अनु.) 1378	दक्षिणी-पूर्वी भारत
17.	बर्मी कोमन संवत्		638 ई.	1355 (अनु.) 1373	बर्मा व बुध्दगया
18.	भौमाकर संवत्		820 ई.	1173 (अनु.) 1191	उड़ीसा
19.	कोलम संवत्		824 ई.	1169 (राष्टीय पंचांग) 1187	मालाबार कोचीन
20.	नेवार संवत्	जयदेव मल्ल	878 ई.	1115 (अनु.) 1133	नेपाल (इस संवत् के आरंभ के समय भारत की सीमा यहाँ तक थी)
21.	चालुक्य विक्रम सं.	सोलंकी राजा विक्रमादित्य	1076 ई.	917 (अनु.) 935	दक्षिणीपश्चिमी भारत
22.	लक्ष्मण सेन सं.	सेनवंशी राजा लक्ष्मण सेन	1118-19	886 (अनु.) 904	बंगाल, बिहार
23.	शिवसिंह सं.	जय सिध्दराज	1113 ई.	880 (अनु.) 910	
24.	शाहूर सं.	मोहम्मद तुगलक	1325 ई.	668 (अनु.) 686	
25.	पण्डुवैप्पू सं.		1340-41 ई.	653 (अनु.) 770	
26.	तारीख इलाही सं.	अकबर	1556 ई.	437 (अनु.) 455	
27.	जुलूसी संवत्	अकबर	1556 ई.	437 (अनु.) 455	
28.	राज्याभिषेक सं.	शिवाजी	1673 ई.	320 (अनु.) 338	

KING VIKRAMADITYA OF PARAMARA DYNASTY IS HISTORICAL PERSON OF FIRST CENTURY B.C.E.

-Dr.M.L.Raja*

ABSTRACT - The various narrations and accounts pertaining to King Vikramaditya of Ujjain, found in the ancient texts of our Nation and the historical notes and writings of the foreign scholars and historians were analysed properly and thoroughly. This clearly and assertively proves that King Vikramaditya who came in the lineage of Agnikula of Paramara dynasty of Ujjain, is definitely a historical person and he ruled most of the parts of Bharat for 100 years, between 81 B.C.E. to 19 C.E. He started his Era in 57 B.C.E., when he conquered Nepal.

Key words - Vikramaditya, Paramara Dynasty, Agnikula, Mahabharata war, Sakakala, Saptarishi Mandalam and Magha Nakhsatra.

INTRODUCTION

The narrations and accounts pertaining to King Vikramaditya of Ujjain, in the ancient texts of our Nation and the historical notes and writings of foreign scholars and historians were abundant. Before coming to any conclusion regarding the historicity and the period of reign of King Vikramaditya, one has to study these writings thoroughly and properly, without any prejudice and preformed ideas. In this paper, the writings of Varahamihira, Aryabhatta, Kalidasa, Bhattotpala, Kalhana, Alberuni, Abul Fazl, Alexander Cunningham, John W.McCrindle, A.P.Sinnette and Sir. William Jones and Bhavishya Mahapuranam were analysed.

l. BHAVISHYA MAHAPURANAM

Here the word 'Bhavishya' means Bhavishya Kala and thus, Bhavishya Mahapurana describes the incidents of future period also i.e. after the period of writing this text. Thus, the date of Bhavishya Purana is ancient to these incidents. The 14 and 15 sloka of Pratisarga Parva, Prathama Khanda, 7th Adhyaya of this text (3-1-7-14 &15) mentioned the year of birth of Vikramaditya as,

पूर्णे खिशंअछते वर्षे कला? रारे भयंकरे। शकानां च विनाशाथ? आर्यधर्मविवृणदये॥

The meaning of these sloka and up to 24th sloka is, "In 3000 Kaliyuga (101 B.C.E.), due to attack of Saka people, there was terror. To destroy these Saka and to protect and enhance Dharma, by the orders of Siva, from Kailasa, he was born as the son of Gandarvasena, the King of Ujjaini. He was named as Vikramaditya by his father. At

*Director, AVINASH (Academy on Vibrant National Arts and Scientific Heritage), Sree Krishna Hospital, 15 Sangagiri Road, Pallipalayam, Erode-6, pin-638006, Tamilnadu, inlrsreekrishna(g),vahoo.corn 09443370129

the age of 5, he went to forest to do Tapas. He returned Ambavati (Ujjain) at the age of 12. When he was about to ascend the Simhasana with 32 Idols, a Vetala came and guided him with Dharmic rules to be adopted by him on governing." Then, Vikramaditya came to power in 3020 Kali (81 B.C.E.) and ruled for 100 years up to 3120 Kali (19 C.E.). This is mentioned in sloka 3-4-1-22 as,

शिवाज्ञया च नृपतिर्विक्रमतिनयतितः। शतवष? कृतं राअयम् देवभ? तितोऽभवत्, दशवर्ष।

The boundaries of Vikramaditya Kingdom, as per 3-3-2-10 sloka was,

पळचिमे सिधधुनणधते सेतुबधधे हि दक्षिणे। उखारे बदरीथिाने पूर्वे च कपिलाधितके।।

Thus, the boundaries were on the west Sindhu River, on south Rameswaram, on north Badari (Himalayas) and on east Kapila (Assam). After Vikramaditya, the Kingdom was divided into 18 parts namely, Indraprastha, Pancala, Kurukshetra, Kapilam, Antharvedi, Vraja, Ajameram, Marudnva (Rajasthan), Gurjaram, Maharashtram, Dravidam, Kalinga, Avantiya, Udupam (Udupi), Vanga, Gauda, Maghada and Kausalyam. Thus, we can understand the vastness of his Empire.

Bhavishya Mahapuranam also described his dynasty. He belongs to Pramara (Panwar) dynasty of Agnikula Vamsa. There are 4 Agni vamsa. 1 .Pramara of Sama Veda in Ambavati (Ujjaini), 2. Capahani (Vayahani) of Yajur Veda in Ajameram, 3.Sukla (Calukya) of Rig Veda in Dvaraka and 4. Pariharaka of Atherva Veda in Kalinjarapuram (3-1-6-47 & 48 and 3-1-7-1 to 14 and 3-1-4-12 to 15). King Pramara started his dynasty in 2710 Kali (391 B.C.E.) as stated in 3-1-7-7 & 8 sloka as,

पूर्णे णे च सहाधिते सूता वचनमब्रवीत्। सरविंशतिशते वर्षे दशारदे चाधिके कला? ॥
रमरो नाम भूपालः कृतं राअयं च षट्समाः।

Bhavishya Mahapuranam also mentions that for 100 years after Vikramaditya, Nation was in peace. Then again, Saka marched from Himalaya and Sindhu marga and attacked. Then Salivahana, great grand son of Vikramaditya, defeated Saka, maintained Dharma and peace and ruled well for 60 years (3-3-2-9 to 33). Thus, Bhavishya Mahapuranam strongly confirms that King Vikramaditya of Pramara Dynasty is definitely a historical person of first century B.C.E.

2. JYOTIRVIDABHARANAM OF KALIDASA

Kalidasa mentioned the year of writing of this text in the 21st sloka of 22nd adhyaya as,

वर्षैः सिधधुरदर्शनारबरगुण?र्याते कला? सरिमते
मासे माधवसंज्ञिके च विहितो ग्रधथक्रियोपक्रमः।

This means that the poet Kalidasa started writing this text in the month of Vaisakha (and ended in the Month Kartika:) in the year 3068 of Kaliyuga completed. Kali 3068 is 33 B.C.E. (3101 - 3068). So, Kalidasa lived in first century B.C.E. is the definite conclusion arrived from this sloka.

Besides, Kalidasa mentioned in sloka 20th of 22nd adhyaya, that he also wrote three Kavya with Raghu Vamsam as the foremost, a text on the rules of Vedic rituals and Jyotirvidabharanam, and in the previous sloka he mentioned that he was the best friend of King Vikramaditya. Hence, the author of Kavya like Raghuvamsam etc. and Jyotirvidabnaranam was one and the same Kalidasa of Vikramaditya period. However, there was also

another Kalidasa, who accompanied Bhoja Raja, 13th King after Vikramaditya, during Bhoja's expedition against Saka, beyond Sindhu River (3-3-3-1 to 4 of Bhavishya Mahapuranam). Sloka 8 to 1 1 and 19th details the names and numbers of scholars, poets, astronomers and Vedic scholars present in Vikramaditya's court. The 7th sloka tells that Vikramaditya was Malava Indra in Bharata Varsha. Vikramaditya's capital was Ujjaini, where the abode of Mahakala Mahesvar is present as per sloka 16 of 22. The 12th sloka details his army strength. 14th sloka mentioned that the King had won Dravida, Lata, Vanga, Gauda, Gurjara, Dhara and Kamboja. As per 46 sloka of 20th adhyaya, Kamboja, Gauda, Andharika, Malava, Surajya and Gaurjara were under his direct rule.
The 13th and 17th sloka of 22 adhyaya mention that Vikramaditya won Saka, the outcasted Kshatriya of Bharatian origin. He won the Saka King, 'Rukmadesatipati, Sakesvaran' who ruledRukma Desa (Rumma or Roomaka in north west Bharat). Thus, Vikramaditya was called as Sakaari or Saakakartruhaa, the destroyer of Saka, thereby became a Sakakaaraka, the creator of an Era. This is explained in sloka 109 of 10th adhyaya. The word Saka, 1. In Sakaari, means 'strength' denoting Saka people and 2. In Sakakaaraka, it means 'to know' i.e. Era, from which we know the number of years elapsed. In 1 10 and 1 1 1 sloka of 10th adhyaya, Kalidasa mentioned the number of years between Yudishthira and Vikramaditya Era as 3044. Bhavaratna wrote a commentary on Jyotirvidabharanam, by name Sukhabodhika and he detailed the above in the same way.
Kalidasa mentioned in 10th sloka of 22nd Adhyaya, the names of Navaratna including the famous Varahamihira and himself, in the court of King Vikramaditya.

धधवधतरि क्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभअ घटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रएनानि व? वरशचिर्नव विक्रमयि॥

The 9th and 19th sloka of 22nd Adhyaya also mentioned that Varahamihira was a famous scholar and astronomer in the court of Vikramaditya. Besides, in 1st and 2nd sloka of Uttara Kalamrutam, an astrological text written by Kalidasa, he prayed Ganesa (Bhavani Suta:) and Maha Kali to protect Vikramaditya. Thus, Vikramaditya, Varahamihira and Kalidasa were contemporary and all the three lived in first century B.C.E. is the definite conclusion. However, as per the opinions of the so-called oriental experts, the period of Varahamihira was said to be 505 C.E. Because of this, much discrepancy i.e. a period of around 600 years, arises. Hence, it becomes necessary to clear this discrepancy before proceeding further.

3. VARAHAMIHIRA'S PANCASIDDHANTIKA

Varahamihira mentioned his date in Panca Siddhantika, in 8th sloka of 1st adhyaya: as,

सराळिव वेद संख्यं शककालमपायि च? खशुक्लादा?।
अण र्दातिमिते भाना? यवनपुरे सा? रयदिवसाणे॥

Saptasvi Veda sankhyam Sakakalamapasya Caitra Sukladau I Arddhastamite Bhanau Yavanapure Saumyadivasadye II

The meaning is, deduct the year 427 of Saka Kala elapsed (i.e. deduct 427 from the number of years in Saka Era for which the ahargana is wanted), at the beginning of the bright half of Caitra lunar month, when the Sun has half set at Yavanapuri, at the beginning of Wednesday. This means that Varahamihira either compiled Panca Siddhantika or was born in 427 of Saka Kala.

4. VARAHAMIHIRA'S BRUHAT SAMHITA

To know the date of Varahamihira precisely, the starting year of this Saka Kala has to be found out and in 3rd sloka of 13th adhyaya: of Bruhat Samhita, Varahamihira mentioned it as,

आसधमघासु मुनयः शासति पृखवीं युधि? रे नृपता? ।
षट्णिक्पअचणियुतः शककालयि तयि राज्ञळच ।।

Asan Maghasu Munaya: Sasati PrthvTm Yudhisthire nrpatau I Sat dvika panca dviyuta: Sakakalastasya Rajnasca 1 1

"The Seven Rishies (Munaya: - Saptarishi Mandalam, The Great Bear) were stationed in the asterism Magha, when the King Yudhishthira was ruling. The commencement of Saka Kala took place 2526 years after the period of that Monarch (Yudhishthira)" is the meaning. Now, we have to ascertain the period of Yudhishthira of Panca Pandava, to derive the starting year of this Sakakala and thereby the date of Varahamihira. The following evidences will be much useful in this regard.

5. BATTOTPALA COMMENTARY

Battotpala in his commentary to Bruhat Samhita, explained the above sloka as follows,

ङ्खाथा च वृद्धगर्ग :–
कलिणापरसधधा? तु िथताति पितृद?वतम् । मुनयो धर्मनिरताः रजानां पालने रताः ।।

The meaning is, "Accordingly, Vruddha Garga mentioned that at the junction of Kali and Dvapara yuga, the Seven Rishies (Munayo - Saptarishi Mandalam) were stationed in the asterism Magha (Pitru Daivadam)." Here, by using the words, 'tatha ca' and quoting the concerned writing of
Vruddha Garga exactly at this place, Battotpala clearly expressed that the period of King Yudhishthira and Kali Dvapara Junction (Sandhi) are one and the same, in terms of time.

6. ARYABHATTIYAM

Aryabhatta, in 5th sloka of 1st Adhyaya (Dasagitikapada) of Aryabhattiyam mentioned,

काहो मनवो ढ मनुयुगाः ळख गताति च मनु यगाः छ्र च ।
कशपादेर्युगपादा ग च गुशदिवसाच्च भारतात् पूर्वम् ।।

This means that before Mahabharata war (Bharatat Poorvam), 6 manvantra, 27 mahayga and three parts of this mahayuga (Satya [Kruta], Treta and Dvapara) were gone. Thus, Aryabhatta clearly shown that Mahabharata war took place at the end of Dvapara yuga. If the war had happened a few hundred years after the beginning of Kaliyuga, he would have also added the number of years in Kaliyuga, that would have passed before Mahabharata war, to this list of manvantara and yuga. However, he stopped exactly at Dvapara yuga itself. This clearly shows that the Mahabharata war and hence the period of Yudhshthira, was at the junction of Dvapara and Kaliyuga only.

Besides, Aryabhatta was actually born in 337 Kali *QwA* B.C.E.), as per 3-10 sloka of
Aryabhattiyam. Here the word in the first sentence of this sloka, Shadbi: was altered into Shashti: so as to bring

his date after Ptolemy et al to the 5th century C.E. Nevertheless, shadbhi: is proved to be correct, based on grammatical and other strong evidences found in our Nation's ancient astronomical texts. These things are well explained in the book, "Actual date of Aryabhatta."

7. ABUL FAZEL AND ALEXANDER CUNNINGHAM

Abul Fazel (Abul Fazl) wrote Ain-i-Akbari (Ayeen Akbary), the text on Akbar and he was contemporary to Akbar. Ain-i-Akbari was rendered English by Francis Gladwin from the original Persian sources. In Ain-i-Akbari (printed by G.Auld, Greville Street, London in 1800), in the page 263 of 1st volume 3rd part, Abul Fazel wrote as,

"In the beginning of the fourth or present jowg (yuga), Raja Joodhister (Yudhishthira) was the universal monarch, and the commencement of his reign became an epoch of an era of which to this time, being the fortieth year of the reign, there have elapsed 4696 years." The 40th year of Akbar was 1595 C.E. and 4696 years before 1595 C.E. is 3101 B.C.E. which was the period of Yudhshithira as per Abul Fazel' statement (4696 -1595 = 3101).

Alexander Cunningham the British Engineer, who was the director of Archeological Survey of Bharat in 1890s, wrote "Book on Indian Eras" (Indological Book House, Varanasi). In the page 7 of this book, he gave exactly the above writings of Abul Fazel and added the following,

"Now the fortieth year of Akbar was A.D. 1595, which deducted from 4696, gives B.C. 3101 as the period of Yudhishthira as well as of the Kaliyuga."

Therefore, the correct dates are, Yudhishthira won Mahabharata war in 3138 B.C.E., went to Vanavasa in 3101 B.C.E. and then to Heaven in 3076 B.C.E. The Saptarishi Mandalam was in Magha Star till 3076 B.C.E., as per astronomical data. Then, 2526 years after 3076 B.C.E. is 550 B.C.E., at which Saka Kala started, as per Varahamihira. This is the Era of Saka King Cyrus II of Parasikam. (Refer 'Indian Eras' by Kota Venkatachalam, for full details). Thus, 427 Sakakalam of Varahamihira is 123 B.C.E. (550 -- 427) at which year Varahamihira either compiled Panca Siddhantika or he was born in. Thus, Varahamihira lived in first century B.C.E. is the conclusion. Varahamihira was one of the Navaratna in the court of King Vikramaditya, there by proving that King Vikramaditya also lived in first century of B.C.E. and thus there is no discrepancy at all.

Besides, AbulFazel in his Ain-i-Akbari wrote in this same page as, "Bickermajeet (Vikramaditya) reckoned from his own accession to throne, and reigned for 135 years. Of this era, there have elapsed 1652 years." Thus, AbulFazel clearly shown that the date of Vikramaditya as 57 B.C.E. (1652-1595 = 57).

8. KALHANA'S RAJATARANGINI

This text describes the rulers of Kashmir in chronological order from Mahabharata war up to the time of its author Kalhana (520/1 148 C.E.). The 125th sloka of 3rd Taranga mentioned as,

''तखानेहयिुअजयिधयां श्रीमाधहर्षापराभिधः।
एकअछएखळचक्रवर्ती विक्रमादिएय इएयभूत्॥''

The meaning is Vikramaditya, who had the title (para abhidha:) as Sri Harsha, ruled under one Umbrella at Ujjaini, as a Great Cakravarti. Destruction of Saka people by Vikramaditya is mentioned by Raja

Tarangini in 128th Sloka of 3rd Taranga as, "By destroying the Saka, Vikramaditya made the task light for Siva who is to descend to the Earth for extermination of Mleccha." King Vikramaditya sent Matrigupta from Ujjain to rule Kashmir, as there was no ruler after the sudden demise of Hiranya and Toramana. As Vikramaditya was the Chakravarti of whole Bharat, he was duiy-bound to take care of Kashmir and thus sent Matrigupta. This history of Matrigupta was given in detail in 129 to 290 sloka of 3rd Taranga.

Further, in 5th and 6th sloka of 2nd Taranga, the text mentioned as, "Then they brought Pratapaditya, a relative of King Vikramaditya and inaugurated him as King of Kashmir," and these sloka cautioned that this Vikramaditya should not be confused with another Vikramaditya who was Sakaari, the destroyer of Saka.

9. ALBERUNI

These two Vikramadityas and their period were clearly distinguished by Alberuni (Abu Raihan), the Persian traveller, in the page 7 of 2nd Volume of Tahqiq ma lil-Hind written in 1030 C.E., (Alberuni's India - translated into English by Edward C.Sachau - Munshiram Manoharlal), as, "Now the year 400 of Yazdajird, the gauge year corresponds to the following years of Indian Eras.

1. To the year 1488 of the era of Sri Harsha, 2. To the year 1088 of the era of Vikramaditya.

This 400th year of Yazdazird (Yazdegerd-I) is 1031-32 C.E.. Thus, 1488 years before 1031 C.E. is 457 B.C.E. at which Sri Harsha era started and 1088 years before 1031 C.E. is 57 B.C.E. at which the era of Vikramaditya started. This Sri Harsha, ruled Ujjaini 400 years before Vikramaditya. He is the son of Chandra Sarma, who latter took up Sanyasam with the name Sri Govinda Bhagavat Pada, the Guru of Srimad Adisankara of 509 - 477 B.C.E. Thus, Sri Harsha who ruled Ujjaini in 457 B.C.E. had the title as Vikramaditya and King Vikramaditya of 57 B.C.E. had the birth name Vikramaditya and the title name as Sri Harsha.

In page 6 of 2nd volume of this text, Alberuni detailed the victory of Vikramaditya over Saka King as, "The here mentioned Saka tyrannized over their country between the river Sindh and the ocean, after he had made Aryavarta in the midst of this realm his dwelling place. The Hindus had much to suffer from him, till at last they received help from the east, when Vikramaditya marched against him, put him to fight and killed him in the region of Karur, between Multan and the castle of Luni. Now this date become famous, as people rejoiced in the news of the death of the tyrant, and was used as the epoch of an era, especially by the astronomers. They honour the conqueror by adding Sri to his name, so as to say Sri Vikramaditya."

10. ALEXANDER CUNNINGHAM

Vikramaditya's victory over Saka people was also mentioned by A.Cunningham in his "Book on Indian Eras" in the page 52, quoting Abu-Rihan (Alberuni), as, "Saka was the name of the King who reigned over the country situated between the Indus and the sea; Vikramaditya marched against him and killed him in a battle fought near Korur, between Multan and the fort of Luni." Further, Cunningham wrote in the 49th page of this book, "The era of Vikrama also said to have been established by Vikramarka Raja 470 years after Mahavira or in 527—470 =57 B.C." He also wrote "Satrunjaya Mahatmya professes to have been written 477 years after Vikrama or in A.D. 420," i.e. 57 B.C. (477-420) as the date of Vikaramaditya.

11 . JOHN W. McCRINDLE

John W.McCrindle, the western scholar, who authored many books and translations of Greek classical Literatures, especially on Alexander, mentioned in "Ancient India as described by Ptolemy" edited in 1885 at Edinburgh (Munsiram Manoharlal) in pages 154 and 155 as, "Ozene -This is the translation of Ujjayani, the Sanskrit name of the old and famous city Avanti, still called Ujjain. It was the capital of celebrated Vikramaditya, who having expelled the Skythians and there after established his power over the greater part of India, restored the Hindu monarchy to its ancient splendour.....the date of the expulsion of Sythians by Vikramaditya which forms the era in Indian Chronology called Samvat (57 B.C.).... about a century and a half after Vikramaditya era, Ujjain was still a flourishing city."

12. A.P.SINNETT

A.P.Sinnett, the western scholar who was also President, the Simla Electric Theosophical Society wrote in his book, "Esoteric Buddhism" (Indological Book House, Varanasi) in the page 151 as, "The party of primitive Buddhism was entirely worsted, and the Brahman ascendancy completely re-established in the time of Vikramaditya about 80 B.C."

13. SIR WILLIAM JONES

He was an English judicial officer in East India Company. He was the founder and first president of Asiatic Society, Calcutta. In his presidential address as the 10th anniversary discourse at Asiatic Society on 28th February 1793, he mentioned "two certain epochs between Rama who conquered Siln a few centuries after the flood, and Vicramaditya, who died in Ujjayini fifty seven years before beginning of our era." [1. The Asiatic Researches, 4th volume page xiv, published 1798 C.E. London and 2. The Works of Sir William Jones, volume 3, page 220, published in 1807 C.E. London]. Thus, William Jones not only accepted Rama and Vikramaditya as historical persons but also the period of Vikramaditya as 1st century B.C.E.

In his work, "On the chronology of the Hindus" which he wrote as a President of Asiatic Society in January 1788, which was published in 'The Works of Sir William Jones' in volume 4, year 1807, London, he mentioned in page 40, "After the death of Chandrabija, which happened, according to Hindus, 396 years before Vicramaditya, or 452 B.C., we hear no more of Magadha as an independent kingdom." Thus, he mentioned the period of Vikramaditya as 56 B.C.E. (452 - 396). In the page 43 he added, "We may arrange the corrected Hindu chronology, according to the following table, supplying the word about or nearly, (since perfect accuracy can not be attained and ought not to be required), before every date. Vicramaditya - 56 Y.B.C." (Y.B.C. -Years Before Christ). Thus, in his chronological table, given next page of 46, he mentioned Vicramaditya lived 1844 years before William Jones' time (1788 C.E.), i.e. 56 B.C.E. (1844-1788).

In page 44, he wrote, "As to Raja Nanda, if he really sat on the throne a whole century, we must bring down the Andhra dynasty to the age of Vicramaditya, who with his feudatories had probably obtained so much power." This statement clearly shows that William Jones totally accepted that Vikramaditya as a historical personality. Besides, it also shows that these scholars' readiness to alter the facts of history according to their level of understanding, will and wish and reluctance to work hard to find facts. Their wrong mentality and their reluctance and reservations in accepting the great antiquity of Bharat can be shown by citing his introductory

remark in this work, as found in page 1 of this text. "The great antiquity of Hindus is believed so firmly by themselves, and has been the subject of so much conversations among Europeans." Thus, we firmly and assertively knew the great antiquity of our Motherland Bharat, in 1790s itself. Nevertheless, this created much disturbances in the minds of Europeans and they couldn't accept our Nation's great antiquity, due to the following two reasons. 1. The first reason is their greedy ambition to rule and loot our Nation, forever. Therefore, they wanted to reduce our great antiquity, in order to seed inferiority complex in our people's mind. Thus, they couldn't digest the ever victorious history of mighty and powerful

Vikramaditya and Salivahana, which will definitely bring much ancestral pride to our people. 2. They strongly believed that the world was created on 23-10-4004 B.C.E. After this, 1500 to 2000 years were gone in Ice Age and the Age of Great deluge. Thus, according to their fundamental belief, the human history could not be extended before 2000 to 2500 B.C.E.

Thus, they tried their level best to reduce our Nation's great antiquity, by any means. This was actually started by Sir William Jones himself in his 10th discourse at Asiatic Society on 28th February 1793. In that speech, he made an inexcusable remark that Sandrokottus found in Greek classical literature may be Chandragupta of Maurya dynasty. Thus, in a hasty manner, without considering there were two more Chandraguptas in Gupta dynasty, they concluded that Chandragupta Maurya was cotemporary to Alexander of Greek. Thus, they fixed Maurya dynasty from 327 B.C.E. and Gupta dynasty from 3rd Century C.E. Therefore, they have to fix 1207 years of reign of Maurya, Sunga, Kanva and Andhra Satavahana into a mere 650 years. In between, the reign of Vikramaditya and Salivahana, as they were rulers of whole Nation, was also to be included. Thus, they had only two options, one, either they had to accept Vikramaditya and Salivahana as historical persons and to give up their wrong chronology once for all or they had to proclaim that Vikramaditya and Salivahana were mythical, so that they can persuade their false theory and carry out their hidden greedy ambitions. They preferred the second, which is totally against the truth, though they themselves initially wrote strongly, that Vikramaditya was a powerful ruler in first century B.C.E., based on strong evidences found in our Nation's ancient texts and foreign historians. However, when they came to know, it is totally jeopardizing their greedy dream, they did a worst somersault.

Thus, they told that Bhavishya Mahapuranam is not reliable, since it mentions recent incidents. Nevertheless, these narrations of recent incidents were interpolated during British rule, with the intension of reducing the reliability of this Purana. Because, it is a fact, that our Purana never talk about foreign incidents. Then, even if it is there, it will not reduce the text's reliability. For example, we are not thinking low of history books or brand them as unreliable, just because they describe recent things. Besides, the narrations of recent things will not reduce the authenticity of ancient incidents described in the text.

पुस्तक–समीक्षा

डॉ. सुस्मिता पांडे

पुस्तक शीर्षक	–	पुरातत्त्व में विक्रमादित्य
लेखक	–	डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित एवं डॉ. जगन्नाथ दुबे
प्रकाशक	–	महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन
संपादक	–	श्रीराम तिवारी
मूल्य	–	रू 60/-

"पुरातत्त्व में विक्रमादित्य" विक्रमादित्य की ऐतिहासिक परम्परा में एक नवीन कड़ी को जोड़ती है। विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता अभी तक राजस्थान, गुजरात एवं मध्यप्रदेश के उन अभिलेखीय साक्ष्यों से प्रमाणित की जाती थी जो कृत, मालव, विक्रम एवं विक्रमादित्य नाम के संवत् का उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन पट्टावलियाँ तथा साहित्यिक साक्ष्य जैसे प्रभावक चरित, बृहत्कथा, बृहत्कथामंजरी, कथासरितसागर आदि का साक्ष्य दिया जाता था। परन्तु फिर भी सदैव ही एक प्रश्नचिह्न बना रहता था कि क्या यह संवत् प्रथम शताब्दी ई. पू. के उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित हुआ था ? क्या साहसी, वीर न्यायप्रिय राजा विक्रमादित्य वास्तव में था ?

डी.आर. भंडारकर , बी.एन. मुकर्जी, डी. सी. सरकार आदि विक्रमादिएय की ऐतिहासिकता को नहीं विीकार करते। विक्रमादिएय की ऐतिहासिकता मानने वाले विणान् ज?से अजयमिख शाी भी जिन पुराताएिवक सीयों का उशलेख करते थे, वे अपरोक्ष श प से ही विक्रमादिएय की ऐतिहासिकता को रमाणित करते ह?। मालव गणराअय के सि? रथम शतारदी ई. पू. से लेकर चा?थी शतारदी ई. तक के रार होते ह? , जिनसे यह संभावना बनती ह? कि रथम शतारदी ई.पू. में विक्रमादिएय का अतिएव होगा, जो अजीबोगरीब लेखों वाले सि? ह?, मगज, मगजत, मजुप आदि उनको कुछ विणान् मालवा तथा कुछ शकों के मानते ह?। दोनों ही परिथितियों में विक्रमादिएय की पररपरा को बल मिलता ह?।

ज?न पअावलियों के अनुसार शकों का आधिपएय कुछ काल के लिए उअजयिनी में हुआ था। परधतु ये सब तर्क अनुमानों पर ही आधरित ह?।

डॉ. राजपुरोहित की पुतिक ने विक्रमादिएय की ऐतिहासिकता को नया मोड़ दिया ह?। क्योंकि उधहोंने इस सधदर्भ में साक्षात् तथा रएयक्ष रमाणों का रयोग किया ह?।

जिन नये सि?ों का उद्धरण उधहोंने दिया ह? वे रमुख श प से तीन रकार के ह?–

रथम रकार में पुरोभाग में वृखाायत बिधदुओं के मणय पंखयु? गतिशील अळव का अंकन ह? तथा पृ? भाग में वेदिका वृक्ष तथा ब्रा?ी लिपि में (सि) रि (ि)वक्रम ह?।

दूसरे रकार में पुरोभाग में दएडकमंडलयु? शिव, ब्रा?ी लिपि में लेख **राजा विक्रम** एवं वेदिका वृक्ष ह?।

एक अधय रकार में भी लेख **विक्रम** आ?र **परवतध?** (पर्वतेध?) **कदस** (कृतयि) अंकित ह?, जिससे यह ज्ञात होता ह? कि कृत संवत् रवर्तक विक्रमादिएय ही ह? तथा पर्वतेध? उधहीं का विशद ह? क्योंकि वे विधणयादि पर्वत क्षेख के भी विामी थे।

इसके अतिरि? डॉ. वि.श्री. वाकणकर णारा रकाशित प?ी मिअी की मुहरों का उशलेख किया गया ह?, जिनमें एक में **'कतस उजेनिय'** उएकीर्ण ह? तथा दूसरी में **कुतस ह?।** दोनों मुहरें रथम शतारदी ई.पू. की ह?।

डॉ. राजपुरोहितजी ने अजीबोगरीब लेख वाले सि?ों को भी मालवगण से सरबधिधत मान कर उनका पूर्ण श प दिया ह?।

अभिलेखीय सीयों में मंदसा?र के निकट अवंलेळवर के समीप एकाळम तिरभ का उद्धरण दिया ह?, जिसमें विक्रमादिएय के नाम सहित जलाशय तथा उसके जल का समति जनों णारा उपयोग का उशलेख ह?।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ 2011-12

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ की स्थापना महाराजा विक्रमादित्य तथा उनके समकालीन चिन्तकों, मनिषियों, सर्जकों के व्यक्तित्व, कृतित्त्व एवं प्राचीन भारत के साहित्य, संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान आदि परम्पराओं का शोध अध्ययन, अनुशीलन, फैलोशिप, व्याख्यान, गोष्ठियाँ, सेमिनार एवं विविध कार्यक्रमों का आयोजन प्रमुख उद्देश्य है।

इस तारतम्य में शोधपीठ में निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित हुए

कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ 2010–11 के अनुसार (विक्रम संवत् 2067–68) में थी।

1–	अप्रैल 2 से 4	त्रिदिवसीय विक्रमोत्सव (प्रति वर्ष प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है।)
		(''युग प्रवर्तक राजाभोज'' नाटक का मंचन हुआ विक्रमोत्सव
2–	अप्रैल 23 से 24	पुराणान्तर्गत इतिहास और विक्रमादित्य
		(राष्ट्रीय संगोष्ठी), उज्जैन
3–	मई 18	वेतालभट्ट व्याख्यान, उज्जैन
4–	जुलाई 5	अमरसिंह व्याख्यान, विक्रम परिचर्चा एवं संगोष्ठी
5–	अगस्त 21	श्री कृष्ण और उज्जैन व्याख्यान,
	अक्टोबर 24	(धनतेरस) धन्वन्तरी संगोष्ठी महिदपुर

कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ 2012 (विक्रम संवत् 2069)

1– विक्रमोत्सव **''सप्तदिवसीय''** 2012 दिनांक 21 से 27 मार्च 2012 तक आयोजित हुआ। इसमें ''महानाट्य **सम्राट विक्रमादित्य,** संगीत अंलकरण, सुश्री अनुराधा पौडवाल एवं श्री शैलेन्द्र शर्मा मुम्बई का संगीत एवं गायन कार्यक्रम।

2– निम्न सांस्कृतिक कार्यक्रम दिनांक 21 से 27 मार्च तक हुए जैसे अ. भा. कवि सम्मेलन, गायन, वादन, नृत्य,साहसिक खेल, वेदिक सम्मेलन एवं वेद मंत्रों पर अन्ताक्षरी, कलश यात्रा एवं नारी शक्ति सम्मेलन आदि कार्यक्रम।

3– संगोष्ठी– ''महाराजा विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता'' 21 मार्च।

4– संगोष्ठी– ''विक्रम संवत् परिसंवाद'' 25 मार्च।

प्रकाशित पुस्तके

1– विक्रमादित्य कथाएँ 2– पुरातत्त्व में विक्रमादित्य 3– पुराणों में विक्रमादित्य 4– चाणक्य–माणिक्य

5– वेतालपंचविंशतिका 6– विक्रमार्क शोधपत्रिका अर्ध्दवार्षिक (प्रवेशांक)

फैलोशिप – महाराजा विक्रमादित्य सीनियर/जूनियर फैलोशिप में निम्नलिखित शोधार्थी शोधकार्य में अध्ययनरत हैं।

1– सीनियर फैलोशिप :– डॉ. सदान्नद त्रिपाठी – ''जैनेतर संस्कृतवाङ्मय में विक्रमादित्य और उनकी रचनाएँ''।

2– जूनियर फैलोशिप :– 1– डॉ. पूजा उपाध्याय – ''संस्कृतवाङ्मय में जल : स्वरूप एवं प्रबंधन''

2– डॉ. मुकेश शाह – '' विक्रमादित्य वैज्ञानिक उपलबिध्याँ (वाराहमिहिर के विशेष संदर्भ में)।

3– विनोद कुमार सुनार :–''कालकाचार्य कथा की परम्परा'' : एक अध्ययन (संवत् प्रर्वतक महाराजा विक्रमादित्य के विशेष संदर्भ में)।

अन्वेषण :– महाराजा विक्रमादित्य राजा भोज कालीन एवं अन्य प्राचीन अभिलेख, सिक्के एवं सीलों पर अन्वेषण कार्य मुद्रा विशेषज्ञ डॉ. जगन्नाथ दुबे के द्वारा किया जा रहा है।

विक्रमादित्य महिमा

जय निजतेजः साधितभूतगण म्लेच्छविपिनदावाग्ने ।

जय देव सप्तसागरसीममहीमानिनीनाथ ।।

जय विजितसकलपार्थिवविनतशिरोधारितातिगुर्वाज्ञ ।

जय विषमशील विक्रमवारिनिधे विक्रमादित्य ।।

कथासरित्सागर, 18/3/103–104

विक्रमादित्य जय विक्रम निजबल ।

जय विषमशील जय विक्रमादित्य जय विक्रम निजबल ।

साधित निजतेज से महाभूत, जय म्लेच्छवनों के दावानल ।

सप्त सागर सीमा की मानिनी धरणी के स्वामी जय अमित बल ।

विजित राजवर्ग नतसिर करते धारण आदेश निखिल ।

जय विषमशील जय विक्रमादित्य जय विक्रम निजबल ।।

विक्रमादित्य जय विक्रम निजबल ।।

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ के प्रकाशन

* पुरातत्त्व में विक्रमादित्य
* विक्रमादित्य कथाएँ
* पुराणों में विक्रमादित्य
* वेताल–पंचविंशतिका
* चाणक्य–माणिक्य (भोजविरचित)

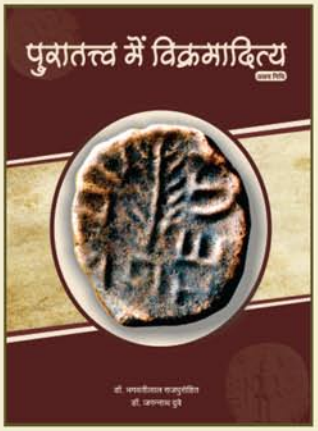

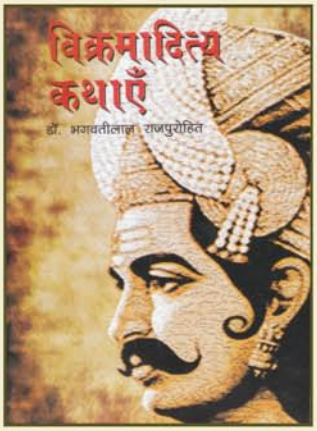

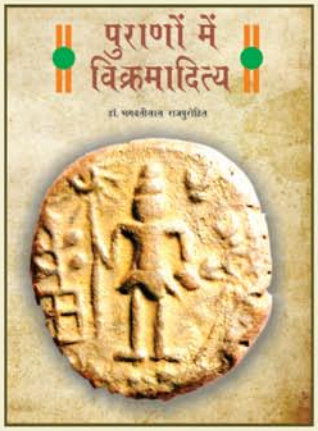

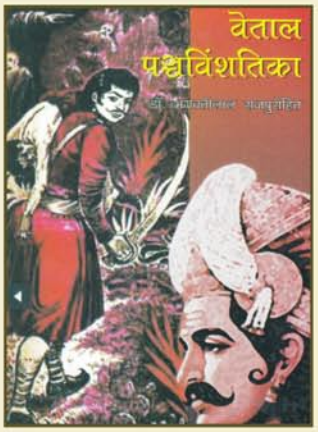

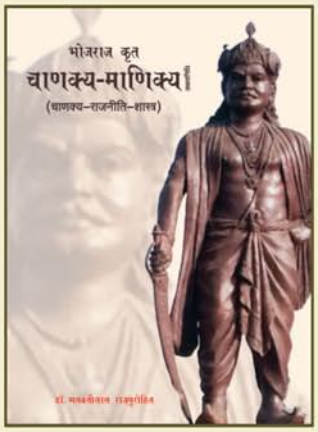

सम्पर्क
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, मध्यप्रदेश
1, उदयन मार्ग, उज्जैन –456010
दूरभाष (0734) 2521499